ओ३म्

इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार,5 मई 2013

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 5 मई, 2013 से 11 मई, 2013

वै. कृ.11 ● वि० सं०–2069 ● वर्ष 77, अंक 54, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,113 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.पी.बी. दयानंद शिक्षण महाविद्यालय सोलापुर में हुआ हवन–यज्ञ

दयानंद शिक्षणसंस्था, सोलापुर के शिक्षाशास्त्र महाविद्यालय के समापन समारोह के अवसर पर दिन के यज्ञ–हवन विधि पूर्वक संपन्न हुआ। इस समारोह का आयोजन डी.ए. बी. दयानंद शिक्षाशास्त्र महाविद्यालय की ओर से किया गया।

यह यज्ञ विधि दयानंद शिक्षण संस्था के स्थानिय सचिव डॉ.वी.के.शर्मा तथा महाविद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ.एस. बी. क्षीरसागर की प्रेरणा से संपन्न हुई।

डा. वी.के. यज्ञ–विधि के मौके पर छात्राध्यापकों को यज्ञ–विधि का महत्व बताते हुए शर्माजी ने कहा कि जीवन में विविध समस्याएँ आती हैं, उन्हें सुलझाने के लिए तथा महसूस करने के लिए शिक्षक को हमेशा सजग रहना चाहिए। प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरपर छात्रों पर दिए जानेवाले संस्कारों का प्रभाव हमेशा याद रहता है। उन्होंने प्राचार्य और शिक्षकों का अभिनंदन किया और कहा–"इतने अच्छे विविधतम कार्यक्रमोंका आयोजन करनेवाला बी.एड. कॉलेज मैने देखा नहीं। यह सब यहाँ ही मिल सकता है।"

इस अवसर पर महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. एस बी.क्षीरसागर, प्राचार्य डॉ. एस. के. वडगबालकरजी, डॉ. श्रीमती. याजमान्यजी अन्य शिक्षक कर्मचारी तथा शिक्षकेतर कर्मचारी भी उपस्थित थे

यज्ञ–विधि के लिए दयानंद शिक्षा संस्था के स्थानिक सचिव डॉ. वी.के. शर्माजी सपत्नीक उपस्थित रहे। प्राचार्य डॉ. क्षीरसागर सपत्नीक उपस्थित रहे। यज्ञ –हवन विधि के माध्यम से महाविद्यालय का वातावरण पवित्र तथा प्रसन्न हुआ।

ओड़िशा के गुलईबहाल ग्राम में हुआ वैदिक धर्म दीक्षा का विशाल कार्यक्रम

होली महोत्सव के शुभावसर पर उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ प्रधान श्री वानप्रस्थ श्री विशिकेशन जी शास्त्री के ब्रह्मत्व में विभिन्न मतावलम्बी 200 से अधिक परिवारों ने अत्यन्त उत्साह और श्रद्धापूर्वक वैदिक धर्म की दीक्षा ली। इस अवसर पर आशीर्वाद देने के लिए गुरुकुल आश्रम आमसेना के आचार्य पूज्यपाद स्वामी व्रतानन्द जी सरस्वती विशेष रूप से उपस्थित थे। उन्होंने भारी संख्या में उपस्थित श्रद्धालु सज्जनों से आग्रह किया

कि देश की अखण्डता और एकता की रक्षा करना है तथा देश में सुख और शान्ति स्थापित करनी है तो हम सभी को सत्य सनातन वैदिक धर्म अपनाने का यत्न करना चाहिए।

यह आयोजन श्री परमानन्द राऊत एवं श्री वासुदेव होता, पं कृष्ण शास्त्री आदि के पुरुषार्थ से हुआ। कार्यक्रम आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध आर्य संन्यासी एवं उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में सम्पन्न हुआ।

जगन्नाथ जैन डी.ए.वी., गिदड़बाहा में हुआ वैदिक यज्ञ

जगन्नाथ जैन.डी.ए.वी. सी.सै. पब्लिक स्कूल गिदड़बाहा (पंजाब) में नए सत्र का शुभारंभ वैदिक मंत्रोच्चारण द्वारा पावन हवन यज्ञ से हुआ। आर्य समाज के सदस्य श्री मदन लाल आर्य जी, जगन्नाथ जैन डी.ए.वी. सी सै.पब्लिक स्कूल गिदड़बाहा की प्रधानाचार्या सश्रीमती मोनिका खन्ना जी तथा स्थानीय समिति के सदस्यगण समिम्मलित हुए। सभी महानुभावों ने मुख्य यजमान श्री रघुवीर सिंह जी के साथ बड़ी श्रद्धा से आहुतियाँ दीं। मोनिका खन्ना जी ने सबका अभिनंदन किया व विद्यार्थियों को चरित्रवान राष्ट्रप्रेमी, देशप्रेमी बनने की शुभाशीष देते हुए अपने बड़ों व गुरूजनों का सम्मान करने के लिए कहा। उन्होंने विद्यार्थियों से कहा ''तुम स्वामी दयानंद जी के सेनानी हो, ऐसे संस्कारखान बनो जिससे अभिभावकों, गुरूजनों समाज व राष्ट्र को तुम पर गर्व हो''। विद्यार्थियों को जन्मदिन आदि पर हवन यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया तथा साथ ही उन्होंने बताया कि हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि महात्मा आन्नद स्वामी जी के पौत्र माननीय श्री पूनम सूरी जी डी.ए.वी प्रबंधकीय समिति के प्रधान निर्वाचित हुए। उन्होंने उनके गुणों से विद्यार्थियों को परिचित करवाया तथा उन्हें अपना प्रेरणा स्रोत बनाकर छात्रों को भी जीवन में उनके पदचिन्हों पर चलने के लिए प्रेरित किया। धर्माचार्य अजय शास्त्री जी ने महात्मा आनन्द स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डाला। विद्यालय के संगीत शिक्षक श्री सोनिक जी ने मधुर भजन सुनाया।

कार्यक्रम के अंत में क्षेत्रीय निदेशक बी.बी शर्मा जी, विद्यालय के प्रबंधक जे. एस. आनन्द जी एवम् समूह अध्यापकों ने बच्चों को सफलता की ओर अग्रसर होने का आशीर्वाद दिया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 05 मई, 2013 से 11 मई, 2013

दोनों हाथों से भर-भरकर दे

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

दिवो विष्ण उत वा पृथ्व्याः, महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः, आप्रयच्छ दाक्षिणादोत सव्यात्।।

अथर्व 7.26.8

ऋषिः **मेधातिथिः**। देवता **विष्णुः**। छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● (**विष्णो**) हे सव्रव्यापक परमात्मन्! (**दिव**) द्युलोक से (**उत वा**) और (**पृथिव्याः**) पृथिवी–लोक से [तथा] (**विष्णो**) हे विश्वान्तर्यामिन्! यज्ञ के देव! (**महः**) महनीय (**उरोः**) विस्तीर्ण (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष–लोक से (**बहुभिः**)वहुत– से (**वसव्यैः**) ऐश्वर्य–समूहों से (**हस्तौ**) दोनों को (**पृणस्व**) भर ले। (**दक्षिणात्**) दाहिने हाथ से (**आ प्रयच्छ**) दान दे (**उत**) और (**सव्यात्**) बाएँ से [भी] (आ [प्रयच्छ]) दान दे।

● हे विष्णु! हे सर्वव्यापक! हे विश्वान्तर्यामिन्! हे विश्व–ब्रह्माण्ड के स्वामिन! तुम अपूर्व धनाधीश हो। विश्व के द्युलोक, अन्तरिक्ष–लोक और पृथिवी–लोक में जो धन बिखरा पड़ा है, वह सब तुम्हारा ही है। अतः तुम धन–कुबेर हो। एक और तुम धनपति हो ओर हम अकिंचन हैं। अतः हम चाहते हैं कि तुम अपने कोष में से दाहिने–बाएँ दोनों हाथों से भर–भरकर हमें दान दो। तुम्हारे रचे द्यु–लोक में प्रकाश का अनुपम पारावार भरा पड़ा है। वह प्रकाश तुम हमें भी प्रदान करो। तुम्हारे रचे विशाल अन्तरिक्ष–लोक में वायु और पर्जन्य का सागर उमड़ रहा है। उसमें से हमें भी प्राण–वायु और अमृतमय वृष्टि–जल प्रदान करो। तुम्हारे रचे पृथिवी–लोक से सुवण, रजत, ताम्र अयस, हीरे, मोती आदि ऐश्वर्यों की निधियाँ भरी हुई हैं। वे ऐश्वर्य तुम हमें भी प्रदान करो। अल्प मात्रा में नहीं, प्रचुर मात्रा में प्रदान करो, क्योंकि हम ऐश्वर्यमय जीवन जीने की ही साध लिये हुए हैं।

पर हे विश्वव्यापी देव! हम केवल इन भौतिक ऐश्वर्यों का ही पाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहते। हम शरीरस्थ द्यु–लोक, अन्तरिक्ष–लोक और पृथिवी–लोक के ऐश्वर्यों को भी पाने के लिए आतुर हो रहे हैं। हमारा अन्नमय कोश ही पृथिवी–लोक है, जिसमें शरीर की त्वचा से लेकर अस्थि–पर्यन्त सब ढ़ांचा आ जाती है। असका ऐश्वर्य है शारीरिक स्वास्थ्य और शारीरिक बल, जिसके बिना मनुष्य का जीवन–यापन,व्यान,उदान, समा, इन पांचों से तथा कर्मेन्द्रियों से मिलकर प्राणमय कोश बनता है। इसका ऐश्वर्य है प्रागण, अपानन आदि क्रियाओं का समुचित रूप से होते रहना तथा हस्त–पादादि कर्मेन्द्रियों को कार्य–क्षम बने रहना। मन और ज्ञानेन्द्रियों से मिलकर मनोमय कोश बनता है। इसका ऐश्वर्य है मन के माध्यम से ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान–प्राप्ति में सहायता होना तथा मन का सत्यसंकल्प करना। ज्ञानेन्द्रियों–सहित बुद्धि विज्ञानमयकोश कहलाता है। इसका ऐश्वर्य है ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान पर ऊहापोह करके निश्चयात्मक ज्ञान अर्जित करना। आनन्दमय कोश द्यु–लोक है, जहाँ हृदयपुरी में प्रतिष्ठित आत्मा के अन्दर ब्रह्म का वास है। इसका ऐश्वर्य है ब्रह्मानन्द की प्राप्ति। हे विष्णुदेव! तुम इन समस्त ऐश्वर्यों से भी भरपूर करने की कृपा करते रहो।

हे जगत्पिता! तुम निरैश्वर्य की अवस्था से पार करके हमें अधिकाधिक ऐश्वर्य प्रदान कर कृतार्थ करते रहो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में स्वामी कह रहे थे– मन को मत हारने दो। मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। लेकिन चिन्ता को छोड़ने का यह भी अर्थ नहीं कि हम निकम्मे और आलसी बन जायें। संसार, परिवार, बच्चे, देश, जाति, परिस्थितियाँ सब बिगड़े हुए हैं, इन्हें सुधारना हमारा धर्म है। चिन्ता मन में न आये ऐसा कैसे हो सकता है यह भी समझाया और कहा कि मन में ईश्वर का विश्वास, उसकी भक्ति और आत्मा का सत्य–सत्य ज्ञान भरो, चिन्ता आयेगी कहाँ? आयेगी भी तो निराश होकर चली जाएगी। सबके भीतर आनन्द का वह भण्डार बैठा है।

हां इतना अवश्य है कि किये हुए कर्मों का फल तो भुगतना पड़ेगा। हंस कर भुगत लो या रो कर। स्वामी जी ने बताया 84 लाख योनियाँ अथवा शरीर भिन्न–भिन्न प्रकार के लोगों के लिये औषधालय हैं। इनमें आत्मा की चिकित्सा होती है। ईश्वर पर विश्वास हो तो चिकित्सा सरल हो जाती है।

अब आगे.....

दिल्ली से 'तेज' समाचारपत्र निकलता है न! उसके सम्पादक थे श्री देशबन्धु गुप्ता। बहुत अच्छे बहुत प्यारे सज्जन थे वे। 'तेज' के सम्पादक भी थे और भारत –भर के सम्पादकों की जो कान्फ्रेंस हुई, उसके प्रधान भी। कलकत्ता में इस कान्फ्रेंस का वार्षिकोत्सव हो रहा था। उसमें सम्मिलित होने के लिए वे वायुयान में बैठे, कलकत्ता की ओर चल दिये। इसी वायुयान से महात्मा गांधी के सपुत्र श्री देवदास–गांधी भी जाना चाहते थे। वे भी सम्पादक थे, कान्फ्रेंस के नेता थे, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के मैनेजिंग सम्पादक भी। परन्तु उन्हें वायुयान में सीट नहीं मिली। कई सिफारिशें कराईं, काफी दौड़–धूप की, कुछ परिचित यात्रियों से भी कहा, ''मुझे आज ही कलकत्ता पहुँचना है। बहुत आवश्यक कार्य है। आप आज की बजाय कल चले जाइये। अपनी सीट मुझे दे दीजिये।'' परन्तु किसी ने उनकी बात नहीं मानी। कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हुआ। देवदास जी निराश होकर घर वापस आ गए। बहुत दुःख के साथ उन्होंने अपने एक मित्र से कहा, ''देखो जी, कैसा समय आ गया है! मैं इन लोगों की इतनी सेवा करता हूँ। जब भी आवश्यकता होती है, दौड़े–दौड़े मेरे पास आते हैं और अब मुझे थोड़ी–सी आवश्यकता पड़ी है तो किसी ने मेरी बात भी नहीं सुनी।'' परन्तु वायुयान तो उनकी शिकायत से रुका नहीं। पालम हवाई अड्डे से वह उड़ा, आकाश में पहुँचा, कलकत्ता की ओर जाने लगा, परन्तु डमडम के अड्डे पर पहुँचा तो चहुँ ओर इतनी धुन्ध थी कि नीचे उतर नहीं सका। देर तक वह चक्कर लगाता रहा। उसका पायलट प्रयत्न करता रहा कि कहीं पर धुन्ध कम हो तो वह नीचे देख सके, परन्तु ऐसा कोई स्थान नहीं मिला। नीचे उतरने का प्रयत्न करता हुआ यह वायुयान समुद्र के किनारे पहुँच गया। पायलट को पता नहीं लगा कि नीचे घना जंगल है। तनिक–सा नीचे होकर यान एक वृक्ष में उलझा,उससे अगले वृक्ष से टकराया और फिर कितने ही वृक्षों को तोड़ता फोड़ता, चकनाचूर करता हुआ पूरी शक्ति के साथ भूमि पर जा गिरा। उसके पेट्रोल का टैंक फटा, पल–भर में सारा यान जल उठा। उसके यात्री जल उठे। कुछ ही देर के पश्चात् वे सब मर चुके थे। हमारे देशबन्धु– गुप्ता का भी अन्त हो चुका था। और यहाँ दिल्ली में श्री देवदास जी अब भी बहुत दुःखी थे। अब भी ईश्वर के और सारे संसार के अन्याय की चर्चा कर रहे थे। तभी तार द्वारा वायुयान के नष्ट होने और यात्रियों के मरने का समाचार 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के कार्यालय में पहुँचा तो देवदास जी चौंके उठे, चिल्लाकर बोले, ''तुमने बहुत कृपा की भगवान् जो मुझे इस यान में स्थान नही मिलने दिया। यदि सीट मिल जाती, यदि मैं भी इस यान में होता तो उस समय मेरा भी ओम् तत्सत् हो जाता।''

सुनो मेरे भाई! भगवान् की आँख बहुत दूर देखती है। आप नहीं जानते कि वह क्या करना चाहता है। आप केवल उस समय के कष्ट को देखते हो, उसे

नहीं जानते जिसे वह जानता है। इसलिए मत करो शिकायतें। भगवान् के दरबार में किसी के साथ अन्याय नहीं होता, किसी को दण्ड नहीं मिलता। आप कुछ नहीं जानते, वह सब कुछ जानता है कि इस समय जो नश्तर वह चुभोता है उससे आपके शरीर में उभरा हुआ फोड़ा गन्दगी से रहित हो जाएगा; आपको स्वास्थ्य मिल जाएगा। वह जानता है कि जो कुनैन वह आपको पिलाता है, उससे आपका मलेरिया दूर हो जाएगा।

इसलिए सुनो, सुनो, सुनो! अपने इस विश्वास में कभी न्यूनता न आने दो कि ईश्वर जो कुछ करता है तुम्हारी भलाई के लिए करता है! उसपर विश्वास करो। उसपर छोड़ दो कि वह ऑपरेशन करे या मरहम लगाए। यह गहरा ईश्वर–विश्वास ही, अटल ईश्वर–प्रेम ही मन को प्रसन्न रखने का उपाय है। छान्दोग्य उपनिषद् का ऋषि कहता है– मनुष्य यदि बीमार हो जाए तो उसे समझना चाहिए कि ईश्वर ने उस पर कृपा की है, समझना चाहिए कि मैं तप कर रहा हूँ और उस तप का फल अच्छा होगा, बुरा नहीं। यह विज्ञान की बात है। शरीर में यदि कोई विष चला जाए, यह विष शरीर को नष्ट करने का प्रयत्न करे तो रक्त में जो स्वास्थ्य के कीटाणु हैं वे इस प्रकार आगे बढ़ते हैं मानो देश पर आक्रमण हो गया हो और देश की सेना उस आक्रमण को रोकने के लिए आगे बढ़ रही हो। आगे बढ़कर ये कीटाणु विष का सामना करते हैं, उसके साथ युद्ध करते हैं। ऐसी घमासान लड़ाई मचती है कि शरीर गर्म हो उठता है। इस गर्मी को हम बुखार कहते हैं। यह ज्वर कष्ट नहीं अपितु इस बात का चिह्न है कि शरीर को जीवन और स्वास्थ्य देनेवाले सिपाही अपना कार्य कर रहे हैं। तब बुखार को कष्ट कहने का क्या अर्थ हुआ? यह तो ईश्वर की कृपा है। इस विज्ञान को जो व्यक्ति अच्छी प्रकार समझ लेता है, उसके लिए संसार में कोई भी दुखः नहीं रहता, चिन्ता नहीं रहती, उसके लिए कष्ट नहीं रहता, फिर बिजलियाँ कड़कें या तूफान गर्जे, भूकम्प आयें या पृथिवी फट जाए, बच्चे बिगड़ जायें या घर में आग लग जाए, बीमारी आए या निर्धनता, पराजय हो जाए या दिवाला निकल जाए, प्रत्येक अवस्था में वह व्यक्ति प्रसन्न रहता है। वह अपने मन को डिगने नहीं देता, मन में निराशा और चिन्ता को आने नहीं देता, क्योंकि वह जानता है कि इस संसार में दु:खी होने, निराश होने और चिन्ता करने की कोई बात नहीं। उसके लिए हर समय प्रसन्नता रहती है,हर समय मस्ती। परन्तु यह अवस्था कब होती है? जब विज्ञान की इस सचाई का प्रवेश उसके मन में हो जाए। इसलिए श्री कृष्ण जी ने कहा, ''विज्ञान की वास्तविकता को समझो। अपने मन को उदास न होने दो, इसमें चिन्ता मत आने दो, निराशाभरे, दु:खभरे और क्रोधभरे विचारों को अपने मन से परे रखो। ये विचार ही तो हैं जो मनुष्य की बुद्धि को, शरीर को, सबको बिगाड़ देते हैं, मनुष्य जब क्रोध के वश में आता है तब क्या होता है? एक अग्नि पूरी तेज़ी के साथ उसके भीतर उभरती है। सबसे पूर्व इसकी लपटें मस्तिष्क में पहुँचती हैं।, इसके सूक्ष्म तन्तुओं को जला देती हैं। तब मनुष्य की टाँगे काँपती हैं, चेहरा लाल हो जाता है, आँखें जलने लगती हैं और जिह्वा लड़खड़ाने लगती है। क्रोधी व्यक्ति को पता ही नहीं होता कि वह क्या बोल रहा है। ऐसी–ऐसी बातें वह कह देता है जिनके कारण बाद में उसे पछताना पड़ता है। बड़े –बडे भयानक परिणाम हो जाते है; परन्तु उस समय तो क्रोध में आया हुआ व्यक्ति कुछ सोचता नहीं, किसी की सुनता भी नहीं। और सुनो, जो लोग बार–बार क्रोध का शिकार होते हैं, बार–बार इस अग्नि को अपने अन्दर जगाते हैं उसका परिणाम जानते हो क्या होता है? *'नर्वस ब्रेकडाउन'* (Nervous breakdown)। हर बार के क्रोध से नये तन्तु जलते हैं। बार–बार जलने से ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि मस्तिष्क की नसों में दुर्बलता आ जाती है। तब एक दिन वह व्यक्ति ठप्प होकर वैठ जाता है। इतना भयंकर परिणाम जिस बात से होता है उसे ठीक कौन कहेगा! इस भूल से सावधान होकर ऐसा उपाय अपनाओ जिससे इस बुरी अवस्था में गिरना ही न पड़े।

मैं आपको बताऊँगा कि मानव –जीवन को सफल कैसे बनाया जा सकता है। आगे चलकर यह बात इस कथा में आएगी। परन्तु सफलता हो या असफलता, यह सब तो आपके मन के वश में है। अभी मैंने कहा–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।

महाभारत का यह उपदेश अशुद्ध नहीं है– 'मन से ही बन्धन होता है, मोक्ष भी; सुख भी।' मन ही आपके संसार को बनाता है–

दिल ही की बदौलत रंज भी है, दिल ही की बदौलत राहत भी।
यह दुनिया जिसको कहते हैं, दोजख भी है और जन्नत भी।।

तुम्हारे अधिकार में है भाई कि इसे स्वर्ग बनाओ या नरक।

इस मन को वश में रखने का सबसे सरल उपाय यह है कि इसको प्रसन्न रक्खो। चिन्ता को, निराशा को, बुरे विचारों को इसके पास मत आने दो। इसको ईश्वर–विश्वास से, ईश्वर–प्रेम से और ईश्वर–भक्ति से इस प्रकार भर लो कि दूसरी वस्तुओं के लिए इसमें स्थान ही न रहे। यह है मन को प्रसन्न रखने का उपाय! प्रसन्न मन ही वश में रहता है, उस मार्ग पर चलता है जिसपर आप चलाना चाहते हैं। जो मन चिन्ताओं से चंचल हो गया है, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से पागल हो गया है, दु:ख और निराशा से निढाल हो गया है अथवा ईर्ष्या, द्वेष, घृणा के विष में डूब गया है, वह आपकी इच्छा से काम नहीं करेगा, अपनी ही इच्छा से कहीं भागता फिरेगा, कहीं चिल्लाता फिरेगा, कहीं थककर बैठ जाएगा, कहीं आपको साथ लेकर किसी गहरे तालाब में जा डूबेगा, किसी दीवार के साथ जा टकराएगा।

बहुत वर्षों की बात है, जब मैं छोटा–सा था; परन्तु मैं नहीं, यह शरीर छोटा था, मैं तो सदा एक–सा रहता हूँ। यह शरीर ही घटता– बढ़ता रहता है। मैं था अपने गांव जलालपुर जट्टाँ में। उसके निकट ही महन्तों का एक बाग था। मैं गांव के उस बाग की ओर जा रहा था। मार्ग में एक बहुत बड़ा जोहड़ आता था जिसे 'मुसद्दीवाना' कहते थे। यह जोहड़ अभी कुछ दूरी पर था कि पीछे से शोर सुनाई दियां मैंने मुड़कर देखा, गांव के एक मुसलमान चौधरी घोड़े पर चिपके बैठे थे और घोड़ा सरपट दौड़ा आता था। कुछ लोगों ने घोड़े को रोकने का प्रयत्न किया, वह रुका नहीं चौधरी जी को मैं जानता था। ऊँची आवाज में पूछा, "चौधरी, इतनी तेजी से कहाँ जा रहे हो ?"

चौधरी जी घोड़े से चिपटे–चिपटे बोले, "इस घोड़े को पता है, मुझे नहीं। मुझे तो गुजरात जाना है।" मैंने आश्चर्य से सोचा कि गुजरात तो हमारे गांव के दक्षिण में है, ये चौधरी जी उत्तर की ओर भागे जाते हैं? तभी घोड़ा पहुँचा मुसद्दीवाना के पास। शायद सामने से कोई वस्तु दिखाई दी थी उसे। वह जोर से उछला तो चौधरी साहब के साथ गिरा मुसद्दीवाना में। मैं जल्दी से भागकर वहाँ पहुँचा। चौधरी जी पर्याप्त संघर्ष के पश्चात् रकाब से अपना पांव छुड़ाने में सफल हो गये थे। जोहड़ के कीचड़ में लथपथ थे। उनकी पगड़ी परे तैर रही थी। घोड़ा दूसरी ओर जा रहा था और चौधरी जी कीचड़ में रंगे–रंगाए बाहर आने का प्रयत्न कर रहे थे। तब पता लगा कि वे गुजरात की जिला कचहरी में उपस्थित होने के लिए घर से निकले थे। गुजरात की कचहरी में पहुंचने के बजाय इस जोहड़ में पहुंच गए क्योंकि घोड़ा वश में नहीं रहा।

यही दशा होती है घोड़े के वश में न रहने से। सुनो, सुनो, सुनो! इस घोड़े को वश में रक्खो, नहीं तो भगवान की कचहरी में पहुंचाने के स्थान पर यह आपको पाप के कीचड़ में पहुंचा देगा। पगड़ी अलग उतरेगी, कपड़े अलग खराब होंगे और उधर समय पर नहीं पहुंचे तो कचहरी में मुकद्दमा खारिज हो जाएगा।

यह घोड़ा बहुत तेज़ है; अभी यहां है, अभी सहस्त्रों–लाखों मील दूर। इससे अधिक तीव्र और शक्तिशाली घोड़ा आज तक उत्पन्न नहीं हुआ। भविष्य में कभी उत्पन्न होगा भी नहीं। रेलगाड़ी 30–40 मील प्रति घण्टा की गति से चलती है। वायुयान तीन–चार सौ मील प्रतिघंटा की गति से उड़ते हैं। जेटयान एक सहस्त्र से डेढ़ सहस्त्र मील प्रति घंटा की गति से बढ़ते हैं। रॉकेट 15 सहस्त्र मील प्रति घण्टा भागता है। सबसे तीव्र गति है प्रकाश की। वह एक लाख छियासी सहस्त्र मील प्रति सैकण्ड चलता है। परन्तु इस मन की गति का मुकाबला कौन कर सकता? अभी यहां है, सैकण्ड के सहस्त्रवें भाग में वह सूर्य में पहुँच जाता है, जहाँ अग्नि का समुद्र उबलता है, कई–कई लाख मील की चिंगारियां इस प्रकार मिट जाएं जैसे भट्टी में गिरा हुआ दाना मिट जाता है; और फिर अभी यह सूरज में है, अभी चन्द्रमा में वापस आ गया है। 9 करोड़ 28 लाख मील इधर, फिर पृथिवी पर पहुँच गया है फिर मंगल तारे में पहुँच गया है। इस सौरमण्डल से बाहर उस ध्रुव तारे में पहुँच गया है, जब कि प्रकाश एक वर्ष में 58 खरब, 65 अरब, 49 करोड़, 60 मील की यात्रा कर लेता है।

कोई अन्त है इस घोड़े की तेज़ी का ? कोई अन्त नहीं है। घोड़े से ही वह परमात्मा मिलता है जिससे बड़ा सुख, बड़ा आनन्द बड़ी शक्ति कोई है नहीं। इसलिए परमात्मा का वर्णन करते हुए वेद ने कहा–

मनसो जवीय:।

'मन ही से उसके पास पहुँचा जा सकता है।' मन ही उसका दर्शन कराता है। उपनिषदों में एक बहुत सुन्दर कथा आती है। अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथिवी और इन्द्र, सब–के–सब एक स्थान पर एकत्रित हुए। तभी एक ज्योति दिखाई दी। सबने कहा, "यह ज्योति क्या है ?"

अग्नि ने कहा, "मैं बड़ा देवता हूँ, मैं जाता हूँ। मैं पता लेकर आता हूँ। वह गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे पता न लगा कि यह ज्योति क्या है। अग्नि, वायु आकाश, जल, पृथिवी सब गये। सबने ज़ोर लगाया। सब हार गये। सबने कहा, "हम तो हार गये। इस ज्योति को जान नहीं सके। इन्द्र को कहो कि वह जाए।" इन्द्र वहाँ पहुँचा तो वह ज्योति छिप गई। अग्नि है आँख, आकाश है कान, पृथिवी है नाक, जल है स्वाद, वायु है त्वचा। ये सब–की–सब ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनसे ज्ञान होता है अवश्य, परन्तु आत्मा का ज्ञान इनसे नहीं होता। आत्मा का ज्ञान इन्द्र से–मन से होता है। मन उस ज्योति के पास पहुँचा तो ज्योति इसलिए छिप गई कि मुझे जाननेवाला, मुझ तक पहुँचनेवाला पहुँच गया है। यह है मन की शक्ति! और

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

लाहौर की कुछ पुरानी यादें : आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव

● विश्वनाथ

नगरकीर्तन और प्रभात–फेरी : लाहौर की दो प्रमुख आर्य समाजें थीं– आर्यसमाज, अनारकली, जो आर्य प्रादेशिक सभा की प्रमुख आर्यसमाज थी और जिसके प्रेरक महात्मा हंसराजजी और कर्त्ताधर्ता लाला खुशहालचंदजी (महात्मा आनंदस्वामी) थे। दूसरी आर्यसमाज थी वच्छोवाली आर्यसमाज, जो शहर के अंदर, शाहआलमी बाजार पार करने के बाद एक गली में स्थित थी। यह आर्यसमाज, आर्य प्रतिनिधि सभा की शीर्षस्थ आर्यसमाज थी, जिसके कर्ताधर्ता महाशय कृष्ण थे। इन दोनों आर्य समाजों की धाक् सारे पंजाब में थी। मैं 1935 से 1945 के दशक की बात कर रहा हूँ जिसे आर्यसमाज का 'स्वर्णयुग' भी कह सकते हैं। यह सुखद संयोग था कि पंजाब के हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व, दो दैनिक पत्र करते थे। एक था, 'दैनिक मिलाप' और दूसरा 'दैनिक प्रताप'। दोनों के संचालक तथा संपादक पक्के आर्यसमाजी थे। 'प्रताप' के महाशय कृष्ण और 'मिलाप' के लाला खुशहालचन्द। इन दोनों पत्रों का प्रभाव पंजाब के नगरों और गांव–गांव तक था। इन्हीं समाचार–पत्रों के माध्यम से आर्यसमाज का डंका सारे पंजाब में बज रहा था।

इन दोनों आर्य समाजों का वार्षिकोत्सव प्रत्येक वर्ष नवम्बर के अंतिम सप्ताह में ही होता था। शनिवार और रविवार को वार्षिकोत्सव के कार्यक्रम और एक दिन पहले शुक्रवार की शाम को नगरकीर्तन, जिसे आजकल शोभायात्रा कहते हैं। दोनों ही प्रमुख समाजों के वार्षिकोत्सव एक मास के इन्हीं तीन दिनों में होते थे, इसलिए पंजाब के दूर–दूर के नगरों से आने वाले उत्साही आर्यसमाजी नवम्बर के इस अंतिम सप्ताह की प्रतीक्षा किया करते थे। वे परिवारों के साथ आते थे, पूरी श्रद्धा और उत्साह के साथ।

पहले मैं इस संदर्भ में अपने विद्यार्थी जीवन की कुछ बातें कहना चाहूँगा। जिन दिनों मैं डी.ए.वी. मिडिल स्कूल में पढ़ता था, पूरे मोहनलाल रोड पर, जहाँ सड़क के दोनों ओर स्कूली पुस्तकों की प्रसिद्ध दुकानें थीं, नवम्बर मास के शुरू होते ही इस सड़क पर थोड़े–थोड़े अंतर पर कपड़े के बोर्ड लग जाते थे, जो सड़क के आर–पार बंधे रहते थे, जिन पर वार्षिकोत्सव की सूचना दी जाती थी। हम विद्यार्थियों के लिए इन बोर्डों का लगना और उनका हवा में लहराना एक तरह से उत्सव के समान होता था। साथ ही, मिडिल स्कूल में जहाँ आर्यसमाज (अनारकली) के उत्सव के पंडाल लगते थे और अनेक आर्यसमाजी पुस्तकों की दुकानें भी, इसी स्कूल के विशाल ग्राउंड में उत्सव से कुछ दिन पहले ही सफाई का अभियान चलता था। स्कूल के विशाल ग्राउंड में सूखी घास फैला दी जाती थी। ऊपर दरियां बिछती थीं और चारों तरफ स्कूल की दीवार के साथ अंदर की ओर दर्शकों के बैठने के लिए भारी लकड़ी के ग्रेडिड स्टेप्स लगाए जाते थे, जैसे कि प्रायः सर्कसों और बड़े खेल के मैदानों में लगे होते हैं। इन पर बैठकर दर्शक दूर से ही सारी कार्यवाही सुविधा से देख सकते थे। स्कूल के छात्र इस सारी सजावट का खूब आनंद लेते थे।

अब आइए नगरकीर्तन की बात करें। आज के दिन कल्पना भी नहीं कर सकते कि डी.ए.वी. हाईस्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए यह अनुशासन आदेश होता था कि वे नगरकीर्तन के लिए गुलाबी रंग की पगड़ियां पहनकर आएं और ठीक चार बजे उपस्थित हों। वहाँ उनकी बाकायदा हाजिरी लगाई जाती थी। अनुपस्थित विद्यार्थियों पर जुर्माना भी होता था। सारे विद्यार्थी फॉर्मेशन में पंक्तियां बनाकर चलते थे और उनके साथ अध्यापक और प्रोफेसर भी। हाथों में 'ओ३म्' की ध्वजा होती थी और आगे चलने वाले छात्रों के हाथ में आर–पार फैले हुए कपड़े के बोर्ड, जिन पर वार्षिकोत्सव की सूचना होती थी। नगरकीर्तन लगभग एक मील लम्बा होता था और इसमें विद्यार्थियों के अतिरिक्त आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी, महात्मा, उपदेशक और लोकप्रिय भजनीक भी चलते थे। जैसे, आजकल रिपब्लिक–डे की परेड होती है, कुछ उसी तरह से बैलगाड़ियों पर, तख्तपोश लगाकर, दरी और चादर बिछाकर, उस पर उपदेशक अथवा भजनीक बैठते थे और थोड़े–थोड़े अंतर पर बैलगाड़ी रुक जाती थी और उपदेशक अथवा भजनीक का कार्यक्रम शुरू हो जाता था। उस समय के उपदेशक और भजनीक जनता की नब्ज़ पहचानते थे और उन्हें भीड़ को बांध रखने की कला आती थी। बैलगाड़ी के चारों ओर लोग इक्ट्ठे हो जाते थे और कार्यक्रम का आनंद लेते थे। इतने में विसल बजती थी और सभी बैलगाड़ियां दस मिनट बाद मानो अगले स्टेशन पर, खड़ी हो जाती थीं और फिर वही कार्यक्रम। यह नगरकीर्तन डी.ए.वी. कॉलेज से शुरू होकर नगर के बाज़ारों और गलियों से होता हुआ, विशेषकर, लाहौर के प्रमुख बाज़ार अनारकली में अपना संदेश चारों ओर देते हुए शहर के अंतिम कोने में समाप्त होता था। लाहौर एक कॉम्पैक्ट शहर था। उन दिनों शहर के अंदर न मोटर चलती थी और न ही तांगे। शहर के बाहर की सड़कों पर जहाँ नये युग के धनी–मानी रहते थे, वहाँ तांगे और मोटरें नज़र आती थीं, वह भी बहुत कम संख्या में। इस नगरकीर्तन में पंजाब के प्रत्येक प्रमुख नगर से आए हुए आर्यसमाजों की टोलियां अपने–अपनी झण्डे लहराती हुईं, और अपने नगर की पहचान देते हुए पैदल चलती थीं। कई उत्साही आर्यसमाजी गले में ढोलकियां लटकाकर चलते थे और ढोलकी बजाकर गाने गाते थे। इस नगरकीर्तन में पंजाब के प्रायः सभी प्रमुख नगरों उनके पहरावे और गाने के ढंग से के दर्शन हो जाते थे जैसे, फ्रंटियर प्रदेश–रावलपिंडी, डेरा इस्माइल खाँ, डेरा गाज़ी खां, कोहाट, कोयटा, आदि से जो आर्यसमाजें आती थीं, उन्होंने कुल्ले और रेश्मी पगड़ियां पहनी होती थीं। मिंटगुमरी, मुल्तान से जो आते थे, उन्होंने सलवारें और रंग–बिरंगी कमीज़ें। इसी प्रकार अन्य शहरों के पहरावे देखने और बोलियां सुनने को मिलती थीं। उन दिनों नगरकीर्तन में जो भजन गाए जाते थे, वे इस प्रकार थे......

'हम दयानन्द के सैनिक हैं, दुनिया में धूम मचा देंगे

यदि पत्थर आए रास्ते में, ठोकर से उसे हटा देंगे।'

अथवा

दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे

दयानन्द का काम पूरा करेंगे।

अथवा

वेदाँ वाल्या ऋषिया तेरे आवन दी लोड़।

अथवा

जग विच धुम्मा पइयां दयानन्द तेरियां

अथवा

सिर जावे ताँ जावे, मेरा वैदिक धर्म न जावे।

यही गीत विद्यार्थियों में भी बांट दिये जाते थे, वे भी समवेत स्वरों में इन गीतों को गाते हुए सारे शहर की परिक्रमा करते थे। इस नगरकीर्तन से मानो शहर आनंदित हो उठता था और एक नया उत्साह जाग उठता था कि वार्षिकोत्सव में अवश्य जाएंगे। शायद इसी कारण वार्षिकोत्सव में इतनी अधिक भीड़ भी होती थी। शुक्रवार की रात को आर्यसमाज के स्टार संगीतज्ञ जैसे, कुंवर सुखलाल, आर्य मुसाफिर, देशराज, संतरामजी की भजनमंडली/चिमटा भजनमंडली तथा अन्य संगीत कार्यक्रम देते थे। ये कार्यक्रम रात के ग्यारह बजे तक चलते थे और इसमें इतनी भीड़ उमड़ती थी, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

वार्षिकोत्सव से एक सप्ताह पहले नगर में प्रभात–फेरी लगती थी अर्थात् लाहौर की विभिन्न आर्यसमाजों के आर्यसमाजी पुरुष और स्त्रियां सुबह छह बजे से आठ बजे तक अपने आसपास के गली–मोहल्ले में भजन गाते थे और उत्सव की सूचना भी देते थे। आज ये सब बातें लुप्त हो गयी हैं।

इन्हीं उत्सवों में मुझे महात्मा हंसराजजी, प्रिंसिपल दीवानचंद (कानपुर वाले), आचार्य ऋषिराम, आचार्य विश्वबंधु, आचार्य रामदेव, पं. भगवत दत्त, स्वामी स्वतंत्रतानंद जी, स्वामी सर्वदानंद जी, स्वामी वेदानंदजी, पं. बुद्धदेव विद्यालंकार, पं. बुद्धदेव (मीरपुरी), ठाकुर अमरसिंह आदि विद्वानों के प्रवचन सुनने और दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

वार्षिकोत्सव के दिनों में उत्सव के प्रांगण में ही पुस्तकों की एक तरह से नुमाइश–सी लग जाती थी, जहाँ आर्य सामाजिक साहित्य और विद्वानों की नई–से–नई पुस्तकें लोग बड़े चाव से खरीदते थे। आर्य परिवारों में आर्यसमाज का संस्कार इन्हीं उत्सवों के कारण भी बढ़ा था। प्रायः सारे दिन का ही कार्यक्रम बनाकर परिवार आते थे। वहीं ऋषि–लंगर में भोजन करते थे। बाहर से आनेवाले अतिथियों को भी बहुत सुविधा रहती थी, उनके खाने–पीने, ठहरने की उत्तम व्यवस्था होती थी। दोनों समाजों के उत्सवों के स्थानों में अंतर भी लगभग दो–तीन फर्लांग का ही था। सारा समय दोनों उत्सवों को जोड़ने वाली सड़क पर दर्शकों का तांता लगा रहता था।

था तो ये वार्षिकोत्सव दो ही दिन का और नगरकीर्तन केवल दोपहर बाद आधे दिन का, परन्तु इसकी धूम और इसका व्यापक असर तो कई महीने चलता था। अंग्रेजी का एक शब्द है, 'वाइब्रेशन' अर्थात् इस वार्षिकोत्सव की गूँज बहुत दिनों तक सुनाई देती थी। वह आर्यसमाज का 'स्वर्णयुग' था। वे दिन हवा हो गये, अब तो स्मृतियां ही शेष हैं।

उपप्रधान,
डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी
चित्रगुप्त रोड, नई दिल्ली

सर्वस्व त्यागी महात्मा हंसराज

● डॉ. अशोक आर्य

डी.ए.वी. आन्दोलन के अमर सैनानी महात्मा हंसराज जी का जन्म 19 अप्रैल 1864 में गांव बजवाड़ा जिला होशियारपुर, पंजाब में पिता श्री चुनीलाल जी तथा माता श्रीमती हरदेवी जी के यहां हुआ। आचार्य रामदेव आपके चचेरे व मोसेरे भाई थे। अल्पायु में पिता के देहान्त पर भाई मुल्कराज जी ने ही आपका पालन व शिक्षा का प्रबन्ध किया। आप निर्भीक थे। जब लाहौर के रंगमहल मिशन स्कूल में मुख्यायापक ने हिन्दुओं की निन्दा की तो आपने एक दम इसका विरोध किया तथा कहा कि सत्य सनातन वैदिक धर्म में केवल एक ईश्वर की ही पूजा को कहा गया है। ऐसा कहते हुए आपने ईसाइयत की कमियां भी गिन्ती करना आरम्भ की तो आग बबूला मुख्याध्यापक ने न केवल आपकी पिटाई ही की अपितु आपको स्कूल से भी निकाल दिया। उन दिनों लाहौर में यह एकमात्र विद्यालय था। अतः आपकी शिक्षा पर संकट के बादल मंडराने लगे। यह तो सौभाग्य ही था की उस अध्यापक को सद्बुद्धि आई तथा कुल दिनों पश्चात् अपनी भूल का सुधार करते हुए आपको वापिस स्कूल में ले लिया गया।

लाहौर में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 24 जून 1877 को डाक्टर रहीम खां की कोठी पर आर्य समाज की स्थापना की। यहीं पर ही आपको महर्षि के उपदेशों के श्रवण का अवसर मिला। इससे आप वैदिक मत में दीक्षित हो गए। महर्षि के निधन पर महर्षि के जीवन स्मारक स्वरूप 1 जून 1886 को डी.ए.वी. स्कूल की स्थापना हुई। इसी स्कूल ने तीन वर्ष पश्चात् महाविद्यालय का रूप लिया। आप इस स्कूल के अवैतनिक प्राचार्य बने तथा अपने भाई से प्राप्त 40 रुपए मासिक की राशि से अपना भरण पोषण करने लगे बाद में कालेज बनने पर भी आप ही प्राचार्य बने। 1891 में जब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का गठन हुआ तो आप ही को इसका प्रचार्य पद दिया गया। इन दिनों तात्कालीन आर्य नेता पं. गुरुदत्तजी, लाला लाजपत राय तथा लाला साई दास जी का आपको पूर्ण सहयोग प्राप्त रहा। आपके नेतृत्व में कालेज ने भरपूर प्रगति की। 1911 में पदमुक्त होने के तीन वर्ष पश्चात् पत्नी का देहान्त हुआ तथा इन्हीं दिनों सुपुत्र बलराज को लाहौर षडयंत्र काण्ड में बन्दी बना लिया गया। किन्तु आपने शान्ति व धैर्य को डगमगाने नहीं दिया।

इसी मध्य देश में अनेक विभीषिकाएं आईं, जिनमें आपने तन, मन से अपनी सेवा से मुकाबला किया व जन समुदाय की सेवा की, यथा 1905 में कांगडा, हिमाचल में, 1934 को बिहार तथा 1935 को बलोचिस्तान के क्वेटा में आए भूकम्प के कारण हजारों व्यक्ति मारे गए। इसी प्रकार 1918 में गढ़वाल में, 1919 में छत्तीस गढ़ में तथा 1920 में उडीसा के पुरी क्षेत्र में अकाल पड गया। तत्पश्चात् मालाबार में मुसलमानों (यवन) ने हिन्दुओं पर बेहद अत्याचार किये। इन सभी अवसरों पर आपने मानवता की रक्षा के लिए दिन रात एक कर सेवा की।

1927 में दिल्ली में प्रथम आर्य महासम्मेलन का आयोजन हुआ। आपको इसका अध्यक्ष बनाया गया। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के वर्षों प्रधान रहने के साथ ही साथ वर्षों ही कॉलेज के भी प्रधान रहे। प्रतिक्षण सेवा कार्यों में व्यस्त रहते हुए अक्टूबर 1936 को आपका स्वास्थ्य ऐसा बिगड़ा कि फिर आप सम्भल न पाए तथा 14 नवम्बर 1936 को 74 वर्ष की आयु में अपने अन्तिम क्षणों तक पूर्ण सचेत व ओ३म् का स्मरण करते हुए अमरत्व को प्राप्त हुए।

अपने सादगी पूर्ण जीवन में आपने त्याग के अभूतपूर्व उदाहरण पेश किये। आप चाहे अवैतनिक कार्य करते थे किन्तु तो भी आप ने कालेज की स्याही से कभी अपना व्यक्तिगत कार्य नहीं किया। आप सदा अपनी जेब में दो पैन रखते थे। एक पैन कालेज का होता था, जिससे कालेज का काम करते थे तथा दूसरा पैन अपना व्यक्तिगत कार्य इसी पैन से ही करते थे। कहीं कभी ऐसा त्यागी व पुरुषार्थी व्यक्ति देखने को भी मिलेगा, विशेष रूप से आज के युग में जब कि सभी तरफ लूट मच रही है। आज तो छोटे-छोटे पद पर आसीन लोगों का भी प्रयास रहता है कि जिस संस्था में वह कार्यशील है, उसी संस्था के माली, चपड़ासी व अन्य कर्मचारी वेतन तो उस संस्था से लें किन्तु काम उनके निवास पर करें। ऐसी प्रति स्पर्धा को देखकर महात्मा जी के तप व त्याग की महत्ता देखते ही बनती है।

उस समय उस आगन्तुक की क्या दशा हुई होगी जब उसने अपने निवास की फुलवाड़ी में माली की भांति काम कर रहे महात्मा जी को पूछा की क्या महात्मा जी घर पर हैं, तो महात्मा जी ने सरल स्वभाव से उत्तर दिया कि हां हैं। उस व्यक्ति ने कहा कि उन्हें बताएं कि उनसे मिलने कोई व्यक्ति आया है तो भी आपने सरलता से कहा कि आप बैठिये। कुछ ही क्षणों में महात्मा जी सामने आकर बैठे तथा कार्य पूछने लगे तो आगन्तुक देखता ही रह गया। इस प्रकार की अनेक घटनाओं से आपका जीवन भरा है। इन्हीं घटनाओं के आधार पर ही तो कहा गया है कि महात्मा जी थे तो गृहस्थ किन्तु तप व त्याग को जब देखें तो किसी संन्यासी से कम न थे। आपके जीवन से यदि वर्तमान स्वार्थी युग के लोग प्रेरणा लें तो देश का स्तर खूब ऊँचा उठ सकता है।

104 / शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी 201010 गाजियाबाद

आर्य समाज के स्थापना दिवस पर

● डॉ. देवराज गुप्ता

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सवंत 1932 तदनुसार 10 अप्रैल 1875 मुम्बई में गिरगांव रोड़ स्थित डा. मानिक चन्द्र की वाटिका समय सायं 5.30 बजे एक अद्भुत घटना – स्वामी दयानन्द सरस्वती एक नवीन संगठन की स्थापना करते हैं। एक सौ सदस्य शपथ लेते हैं सदस्यता ग्रहण करने की – संगठन का नाम है **आर्य समाज।**

संगठन के संस्थापक के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि दयानन्द एक विद्रोही स्वभाव के व्यक्ति थे। बिना कारण जाने और बिना सत्य की कसौटी पर कसे वे किसी परम्परावाद को स्वीकार नहीं करते थे और यही कारण था वे निरर्थक मूर्तिपूजा, बालविवाह, बेमेल विवाह, स्त्री और शूद्रों को पढ़ने की आज्ञा न होना और जाति प्रथा आदि कुप्रथाओं के घोर विरोधी थे, और दयानन्द की मान्यता थी कि इन्हीं कुप्रथाओं के कारण देसवासी अपना सम्मान खो बैठे और देश परतन्त्र हुआ– विदेशी राजाओं के अधीन हुआ। दयानन्द चाहते थे कि ऐसा संगठन तैयार हो जो उनके बाद भी इन कुप्रथाओं के खिलाफ़ लड़ता रहे। देश में सभी लोग शिक्षित हो, सुशिक्षित हों और तभी स्वदेशी राज्य स्थापित हो सकता है। अतः आज से 138 वर्ष पूर्व आर्य समाज की स्थापना हुई और आर्य समाज देश भर में एक आन्दोलन के रूप में उभरा।

प्रत्येक नवीन आन्दोलन में दो बातें प्रमुख होती हैं:–

एक – संस्थापक का चुम्बकीय प्रभाव

दो – उसके अनुयाइयों की प्रथम पीढ़ी द्वारा उसके उपदेशों को व्यवहार में लाना।

आर्य समाज में हमें व्यक्तिगत आचरण संबंधी दो महान गुणों का विकास स्पष्टता दिखाई देता है:–

1. हिन्दू समाज के लिए अपना बलिदान
2. शेष विश्व के प्रति आत्मविश्वास का भाव

आर्य समाजियों में जहां अपनी संस्था के प्रति निष्ठा भाव है वहां यही लोग हैं जिन्होंने सभी प्रकार के सामाजिक कर्तव्यों का पालन भी उसी निष्ठा भाव से किया है यथा:–

दलित वर्ग की शिक्षा, नारी शिक्षा, महामारी के अवसरों पर सेवा कार्य, दुर्भिक्षों और बाढ़ में राहत कार्य

नैतिक उच्चता के साथ-साथ इन में अदम्य साहस भी है। हिन्दू जाति को पुनः जीवित करना आर्य समाज का ध्येय रहा है। स्वदेशी शिक्षा पद्धति का विकास इसका प्रमाण है।

लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना हुई जिसकी शाखाओं के रूप में विभिन्न स्तरों के विद्यालय स्थापित हुए। आज देश भर में 700 से अधिक डी.ए.वी.संस्थान हैं जो उच्च से उच्चतर शिक्षा प्रदान करते हैं और इसके साथ भारतीय संस्कृति और सभ्यता का दिग्दर्शन वहां के विद्यार्थियों और अध्यापिकों के आचरण में स्पष्ट दिखाई देता है।

डी.ए.वी. के प्रथम आचार्य महात्मा हंसराज ने अपना पूर्ण जीवन संस्था की सेवा हेतु बिना किसी पारिश्रमिक लिए अर्पित किया और बाद के भी कई आचार्य और अध्यापक केवल जीविका अर्जन मात्र पर संस्था की सेवा करते रहे।

डी.ए.वी. के अतिरिक्त, दयानन्द के एक दूसरे अनन्य भक्त स्वामी श्रद्धानन्द ने हरिद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में एक अद्भुत कार्य किया। आज यह गुरुकुल एक महान विश्वविद्यालय है और आज देश भर में आर्य गुरुकुलों की एक लम्बी श्रृंखला है जो आर्य समाज और डी.ए.वी. द्वारा संचालित है। इन्हीं गुरुकुलों से आर्य समाज के सद्प्रचारक निकल कर देश भर में दयानन्द के मूल उदेश्यों का प्रचार कर रहे हैं।

आर्य समाज के दस नियम स्वीकार करना आर्य समाज के सदस्यों के लिए अनिवार्य है। ये नियम धार्मिक विचारणा की दृष्टि से अत्यन्त सरल हैं जिन पर विश्वास लाने में किसी भी हिन्दू को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। वे नियम ये हैं:–

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार,

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

परमात्मा का सर्वोत्तम अभिधान ओ३म्

● डॉ. धर्मवीर सेठी

अ, उ और म् – दो स्वर और एक व्यंजन – के योग से बना अद्भुत शब्द 'ओ३म्' सृष्टि, स्थिति और प्रलय का द्योतन करने वाले न जाने कितने ही दार्शनिक भाव अपने अन्तस् में समेटे हुए है। कहीं–कहीं इस शब्द को 'ओम्', ओं, ॐ, इन रूपों में भी लिखा हुआ आप देखते होंगे। परन्तु वेदानुकूल इस की शुद्ध वर्तनी **'ओ३म्' है** जिसमें 'प्लुत' स्वर का प्रयोग किया गया है। उच्चारण करते समय अपने फेफड़ों में पूरी सांस भर कर फिर सांस छोड़ते हुए इस शब्द का होंठ स्वतः धीरे–धीरे बन्द होने तक उच्चारण होता है। पंजाबी भाषा की गुरुमुखी में इसे इक ओंकार और उर्दू (फ़ारसी लिपि) में इसे अपने ढंग से लिखा जाता है।

अपनी प्राचीनतम सनातन वैदिक मान्यताओं को अक्षरशः मानने और डंके की चोट से मनवाने वाले आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जब अपने प्रथम दार्शनिक ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की तो आरम्भ में उस परम पिता परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु ही उन्होंने सम्भवतः प्रथम समुल्लास (अध्याय) में ईश्वर के एक सौ नाम गिनवा कर यह बताने का प्रयास किया कि वैदिक साहित्य में इन शब्दों का प्रयोग, **प्रकरणानुकूल**, परमेश्वर के नाम के लिए ही किया गया है। और कि परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं है। जैसे **परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं, उनके अनुरूप वैसे ही उनके अनन्त नाम भी हैं।**

इस गम्भीर विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि उन सौ नामों का उल्लेख यहाँ अवश्य किया जाए जो अधोलिखित हैं:

ओ३म् (ओं, ओम्), हिरण्यगर्भ, खम, वायु, ब्रह्म, तैजस, अग्नि, ईश्वर, मनु, प्रजापति, आदित्य, अज, इन्द्र, प्राज्ञ, नारायण, सत्, प्राण, मित्र, चन्द्र, चित् (ज्ञान), वरुण, मङ्गल, आनन्द, ब्रह्मा, अर्यमा, बुध, अनादि, अनन्त, विष्णु, बृहस्पति, शुक्र, नित्य, रूद्र, उरुक्रम, शनैश्चर, शुद्ध, शिव, सूर्य, राहू, अक्षर, परमात्मा, केतु, बुद्ध, स्वराट्, परमेश्वर, यज्ञ, मुक्त, सविता, निराकार होता, कालाग्नि, देव, बन्धु, निरंजन, दिव्य, सुपर्ण, कुबेर, **गणेश** (गणपति), गरुत्मान्, पृथिवी, पिता, जल, पितामह, विश्वेश्वर, मातरिश्वा, आकाश, प्रपितामह, भूमि, अन्न, माता, देवी, विराट्, अन्नाद्, शक्ति, अत्ता, आचार्य, विश्व, वसु, गुरु, श्री, लक्ष्मी, भगवान्, कवि, सरस्वती, सर्वशक्तिमान, पुरुष, न्यायकारी, विश्वम्भर, काल, दयालु, शेष, आप्त, निर्गुण, शङ्कर, सगुण, महादेव, अर्न्तयामी, प्रिय, धर्म्मराज, स्वयम्भू, यम, कूटस्थ

इन नामों का विश्लेषण करते हुए आश्चर्यचकित करने वाले तथ्य पाठक के सामने उपस्थित होते हैं। सप्ताह के सभी सात दिन सोम से रविवार तक परमात्मा के नाम हैं। किसी के ऊपर न मंगल हावी होता है न शनि का कोप जो पाखण्डियों ने जनता को भयभीत करने के लिए बना रखे हैं। पौराणिकों की त्रिमूर्ति – ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी परमात्मा का ही द्योतन होता है। यहाँ तक कि राहू और केतु भी इसी श्रेणी में आते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश – ये पंच तत्व भी उसी परमेश्वर की लीला का बखान करते हैं। सत्, चित्, आनन्द तो उस परमेश्वर का स्वरुप हैं ही। अनादि, अनन्त उसे ही तो कहा जाता है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त उसी परमेश्वर के ही तो स्वभाव हैं। वह दयालु परन्तु न्यायकारी है। इसीलिए तो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। साकार और निराकार, निरंजन शब्द भी प्रकरणानुसार उसी दिव्यता की ओर संकेत करते हैं। नौ देवियों की जो चर्चा पुराणों में की गई है उन्हें भी ऋषिवर ने अलग–अलग परिभाषाओं के साथ परमेश्वर के नाम ही माना है। विश्व का भरण–पोषण करने के कारण वह 'विश्वम्भर' भी है। 'शिव' अर्थात् कल्याण– जो सब का कल्याण करने वाला है '**तन्मे मनः शिव संकल्प अस्तु**' ! अन्याय करने वालों को रुलाने के कारण 'रुद्र' भी है। सबके द्वारा वरणीय (चाहने वाला) और सबको चाहने वाला होने से वह 'वरुण' भी है। **'अग्नि' अग्रणी भवति**'। ध्यान रहे चार वेदों में पहले वेद ऋग्वेद का शुभारम्भ ही 'अग्नि' शब्द से होता है – **'अग्निमीके पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं। होतारम् रत्न धातमम्**'।

इस लम्बी सूची में कुछ नाम (शब्द) तो पर्यायवाची हैं, इसमें सन्देह नहीं। परमेश्वर को

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

जब कहा जाता है तो माता, पिता, बन्धु, विद्या (सरस्वती) आदि सभी उसी के नाम से माने गए हैं। शिव का पर्याय शंकर भी है। शम् अर्थात् **'कल्याणं' करोति इति शंकरः'** जो सृष्टि के जीवों का कल्याण करता है वही ईश्वर शंकर भी है।

एक और सारगर्भित नाम है 'हिरण्यगर्भ' अर्थात् जो सूर्यादि तेजस्वरूप पदार्थों का गर्भ अर्थात् उत्पत्ति और निवास स्थान है। यजुर्वेद का एक मन्त्र है –

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्।।

यह मन्त्र से यह बात भी स्पष्ट होती है कि वह परमेश्वर एक ही है, नाम चाहे उसके अनेक क्यों न हों और उसी ने पृथिवी और द्युलोक को धारण भी किया हुआ है।

– इक ओंकार, सतगुर, परसाद, कर्ता, पुरख, निरभो, निरवैर, अकाल, जूनी इत्यादि

– अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत दे सब बन्दे।
एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले कौन मन्दे।।

– इन्द्रं, मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।
(ऋग्वेद–1/164/46)

परमेश्वर के नामों की लम्बी सूची में **'ओ३म्'** ही ऐसा नाम है जिससे परमेश्वर के अनेक नामों का ज्ञान उपलब्ध हो जाता है। **परन्तु इन नामों को प्रकरणानुसार ही ग्रहण किया जाना चाहिए।** यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 17 के अनुसार **'ओम् खं ब्रह्म'** ये तीनों शब्द भी उसी परमेश्वर के नाम हैं। **'अवति इति ओम्'** – रक्षा करने से; **'आकाशम् इव व्यापकत्वात् खम्'** आकाश की भांति व्यापक होने से और **'सर्वेभ्यो बृहत्वात्त ब्रह्म'** अर्थात् सबसे बड़ा होने से – ये सब परमेश्वर के ही नाम है। छान्दोग्य और माण्डूक्य उपनिषदों में भी इसी 'ओम्' की चर्चा है।

इसी चर्चा में मैं कठोपनिषद् के यम–नचिकेता संवाद के एक अंश को उद्घृत करने का मोह संवरण नही कर सकता। जिज्ञासु बालक नचिकेता ने यमाचार्य को कहा कि हे भगवन् ! जो आत्मवत्, धर्म और अधर्म से पृथक हैं, जो कारण और कार्य रूप प्रंपच है, जो भूत और भविष्य काल से भी पृथक् है – ऐसी उस परमसत्ता का मुझे भी परिचय कराइए तो आचार्य उसे आत्मतत्व पाने का साधन बताते हैं:–

सर्वे वेदा यत्पद्मामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योतित्येतत्।।

अर्थात् सभी वेदादि शास्त्र जिस पद (शब्द–परम सत्ता) का वर्णन करते हैं, जिसको पाने के लिए मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा रखने) अनेक प्रकार की तपस्या करते हैं, जिसको पाने के लिए यति लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस परमसत्ता को अत्यन्त संक्षेप में मैं तुझे बताता हूँ और वह है 'ओ३म्'। कैसे गागर में सागर भर दिया गया है।

इसी प्रसंग में यमाचार्य आगे कहते हैं:

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एददालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।
1/2/16,17

इन दोनों मंत्रों में 'ओ३म्' ब्रह्म की महिमा का वर्णन है। ओ३म् का स्मरण, ध्यान, जप ही ब्रह्म का वास्तविक स्मरण है और यह जप सभी जपों में उत्कृष्ट है। **यह ओ३म् जीवन नौका को पार करने का परम साधन है।** जो इसके महत्व को जान जाता है वह ब्रह्मलोक को पा लेता है। उसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

अस्तु! ईश्वर के अन्य सब नाम गौण हैं और 'ओ३म्' नाम ही मुख्य है। मुमुक्षुओं को इसी का जप और ध्यान करना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 8 श्लोक 12–13 में भी इसी 'ओ३म्' के महत्व का ही बखान किया गया है।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति, विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये।।

वेद के जानने वाले विद्वान् वाले विद्वान् सच्चिदानन्द रूप परम पद को अविनाशी कहते हैं, आसक्तिहीन यत्नशील संन्यासी महात्मा जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परमपद को मैं (कृष्ण) तेरे (अर्जुन) के लिए संक्षेप में कहूँगा।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर तथा मनको हृदय में स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मन के द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके, परमात्मा सम्बन्धी योग धारणा में स्थित होकर जो पुरुष 'ओ३म्' उस एक अक्षररूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

अस्तु! इस 'ओ३म्' शब्द के दर्शन (Philosophy) को समझते हुए आइए प्राणायाम के रूप में पूरी सांस भरते हुए इसका उच्चारण कर अपने को अहोभागी समझें। और कोई मंत्र–चाहे प्रणव (गायत्री) मंत्र हो या कोई अन्य–याद रहे या न रहे, सृष्टिकर्ता का यह एक अद्वितीय नाम 'ओ३म्' तो अवश्य याद रहेगा। इसी पर उठते–बैठते अपना ध्यान केन्द्रित रखें।

अन्त में इन पंक्तियों को गुनगुनाते हुए मैं इस लेख की इति करना चाहूँगा:

ओ३म् है जीवन हमारा, ओ३म् प्राणाधार है।

ओ३म् है कर्ता विधाता ओ३म् पालनहार है।

इत्यलम्

ए–1055, सुशान्त लोक,
गुरुग्राम–122009

पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

● डॉ. सहदेव वर्मा

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बंगाल के उन सपूतों में हैं, जिन्हें उनकी विद्वत्ता तथा नारी उत्थान के लिये किये गये महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए चिरकाल तक स्मरण किया जाएगा। उनका जन्म सन् 1820 ई. में बंगाल के मेदिनीपुर जिलान्तर्गत वीरसिंह नामक ग्राम में तथा निधन सन् 1891 में हुआ।

पिता ठाकुरदास वन्द्योपाध्याय तथा माता श्रीमती भगवती देवी दोनों ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। आर्थिक स्थिति सुधारने तथा उदर पूर्ति निर्वाह के लिए वन्द्योपाध्याय जी ने कलकत्ते जाकर दो रुपये मासिक पर नौकरी की। बाद में इन्हें आठ रुपये मासिक पर एक धनी व्यक्ति ने कार्य पर लगा दिया। उस समय उनकी आयु लगभग चौबीस वर्ष की थी।

ऐसी स्थिति थी जब ईश्वरचन्द्र का जन्म हुआ। पाँच वर्ष की आयु में गाँव की पाठशाला में प्रविष्ट होकर ईश्वरजी ने तीन वर्ष तक संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। गुरुजी ने पिता ठाकुर दास जी से कहा– 'अब ईश्वर को कलकत्ते भेजकर अंग्रेजी शिक्षा दिला दो। यह बड़ा मेधावी तथा परिश्रमी है।' परन्तु पिता ठाकुरदास जी बालक को संस्कृत का विद्वान् अध्यापक बनाना चाहते थे। उन्हीं दिनों इनके एक निकट संबंधी श्री मधुसूदन कलकत्ते के संस्कृत कॉलिज में पढ़ रहे थे। उनकी सलाह से पहली जून सन् 1829 ई. को मात्र नौ वर्ष की आयु में संस्कृत कॉलिज के जूनियर विभाग की व्याकरण की तीसरी श्रेणी में इनका नाम लिखा दिया। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात–' की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए, उन्होंने उस परीक्षा को, जो कॉलिज में भर्ती होने के छः महीने बाद होती है, उत्तीर्ण करके पाँच रुपये मासिक छात्रवृत्ति प्राप्त की।

अपने बुद्धिचातुर्य तथा परिश्रम से ईश्वरचन्द्र ने व्याकरण में दक्षता तथा संस्कृत भाषा में वार्तालाप करने का पर्याप्त अभ्यास कर लिया– जब ये गाँव में आते तो ग्रामवासी इनकी विद्वता को देखकर बड़े प्रभावित होते– उनके इस गुण के कारण शत्रुघ्न भट्टाचार्य जो उस क्षेत्र में काफी धनी व्यक्ति थे, अपनी कन्या दीनमयी का सम्बन्ध करने ठाकुरदास जी के यहाँ गये और उनसे कहा– 'बन्द्योपाध्याय जी आपके पास यद्यपि धन नहीं है, परन्तु आपका पुत्र विद्वान् तथा बुद्धिमान् है, अतः मैं अपनी कन्या आपके पुत्र को अर्पण करता हूँ।' यद्यपि ईश्वरचन्द्र की अभी विवाह करने की इच्छा बिल्कुल नहीं थी, किन्तु पिता की इच्छा का मान करने के लिये उन्होंने विवाह–बंधन स्वीकार कर लिया। उस समय ईश्वरचन्द्र की आयु चौदह वर्ष तथा पत्नी दीनमयी की की आयु मात्र आठ वर्ष थी।

ईश्वरचन्द्र ने पन्द्रह वर्ष की आयु में 'अलंकार' की श्रेणी में प्रवेश लेकर अपनी प्रतिभा तथा परिश्रम के बल पर एक वर्ष में ही साहित्य दर्पण, काव्य प्रकाश, और रस गंगाधर, आदि अलंकार ग्रंथों का अध्ययन कर वार्षिक परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त की। कठोर परिश्रम से सत्रह वर्ष की आयु में इन्होंने मनुसंहिता, मिताक्षरा, दायभाग आदि का पारायण एक वर्ष से भी कम समय में करके लॉ–कमेटी की परीक्षा विशेष प्रशंसा के साथ उत्तीर्ण की। उन्नीस वर्ष की आयु में ईश्वरचन्द्र ने संस्कृत कॉलिज में वेदान्त की श्रेणी में नाम लिखाया और सफलता प्राप्त की। वेदान्त के अध्यापक तो इनकी प्रशंसा करते हुए कहा करते थे–'तुम सचमुच ईश्वर हो।'

वेदान्त के गुरु शंभुनाथ वाचस्पति अत्यन्त वृद्ध होने के कारण शारीरिक दृष्टि से सर्वथा अशक्त थे। ईश्वरचन्द्र इनकी तन–मन से सेवा किया करते थे। इनकी ऐसी अवस्था में श्री वाचस्पति जी ने पुनः विवाह की इच्छा प्रकट कर ईश्वरचन्द्र की सम्मति जाननी चाही। ईश्वरचन्द्र ने आदरपूर्वक, किन्तु दृढ़ता से उनकी इच्छा का विरोध करते हुए कहा– "गुरु जी, इस जरावस्था में विवाह करना सर्वथा अनुचित है। एक निरपराध अबोध बालिका के जीवन को आप क्यों नष्ट करना चाहते हैं?" फिर भी वाचस्पति जी ने एक अल्पायु ब्राह्मण कन्या से विवाह कर ही लिया। इस घटना से ईश्वरचन्द्र अत्यन्त व्यथित हुए। एक दिन वाचस्पति जी ने ईश्वरचन्द्र से कहा– 'ईश्वर, अपनी माँ को देखने नहीं आओगे?' यह सुनकर ईश्वरचन्द्र रो पड़े। परन्तु वाचस्पति जी– ईश्वरचन्द्र को घर ले ही गये, वहाँ दासी द्वारा घूँघट खुलवाकर गुरु पत्नी के दर्शन कराए। उस मासूम बालिका–वधू को देखकर ईश्वरचंद्र के धैर्य का बांध टूट गया। उनकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई– उस देवी के चरणों में शीश झुकाकर वापिस लौट गये। गुरु जी ने कहा– 'भोजन करके जाना, परन्तु ईश्वरचन्द्र ने यह कहकर तेजी से कदम बढ़ा दिये कि 'मैं तो इस घर का जल भी ग्रहण नहीं करूँगा।' कुछ ही दिन पश्चात् वाचस्पति जी उस बालिका को रोती–बिलखती छोड़कर वैधव्य नरक में धकेलकर बैकुण्ठ सिधार गये।

ईश्वरचन्द्र अभी यौवनावस्था में कदम रख ही रहे थे, कि उनकी शिक्षा भी समाप्त नहीं हुई थी, कि उनके हृदय में बाल वैधव्य का भयानक दारुण चित्र अंकित हो चुका था। जिसका सूत्रपात उनके जरा जर्जरित गुरु वाचस्पति की बालिका वधू का वैधव्य देखकर हुआ था।

जिस समय ईश्वर न्याय तथा दर्शन शास्त्र की श्रेणी में अध्ययनरत थे, तभी व्याकरण विषय के अध्यापक का स्थान दो मास के लिये रिक्त हुआ। कॉलिज के प्रिंसिपल ने उन दो मास के लिए ईश्वरचन्द्र को चालीस रुपये मासिक पर नियुक्त कर दिया। ये अस्सी रुपये प्राप्त होते ही उन्होंने यह राशि अपने पिता के हाथों में देकर कहा, इन रुपयों से आप तीर्थयात्रा कर आइए। पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए, और जब वे तीर्थ यात्रा से लौटकर आये तब तक ईश्वरचन्द्र ने दर्शन शास्त्र की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर पुरस्कारस्वरूप सौ रुपये, साथ ही सर्वोत्कृष्ट रचना के लिए सौ रुपये तथा उत्तम लेखन के लिये पचास रुपये प्राप्त किये। इस राशि को भी उन्होंने पिता को सौंपकर कहा– 'आप इस रुपये से सब ऋण चुकता कर दीजिए।' अब परिवार की स्थिति हर प्रकार से सुधर गई थी तथा भरण–पोषण का निर्वाह सुचारु रूप से चल रहा था। परन्तु ईश्वरचन्द्र ने अपने अध्ययन में तनिक भी ढील नहीं की।

विद्यासागर की उपाधिः अपने दीप्तिमय कीर्तिमान को अविच्छिन्न रखते हुए चार वर्ष के निरन्तर परिश्रम से आपने षड्दर्शन की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। दर्शन शास्त्र के ख्यातिलब्ध अध्यापक श्री जयनारायण तर्क पंचानन का कथन है कि– 'ऐसा मेधावी अद्‌भुत कर्मा छात्र मैंने जीवन में न देखा, न सुना।'

पाठकगण, विचार कीजिए कि ईश्वरचन्द्र सन् 1829 में केवल नौ वर्ष की आयु में संस्कृत कॉलिज में प्रविष्ट हुए थे, और सन् 1841 दिसम्बर में मात्र 21 वर्ष की आयु में कॉलेज के उच्चाधिकारियों तथा विभिन्न विषयों के समस्त शिक्षक मण्डल ने सर्वसम्मति से ईश्वरचन्द्र को 'विद्यासागर' की गरिमापूर्ण उपाधि से विभूषित किया। यह उनके लिए महान गौरव का विषय था। अब वे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर नाम से ख्यात् हुए।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की फोर्ट विलियम कॉलिज में तत्काल ही पचास रु. मासिक पर नियुक्ति हो गई। तब तक वे बंगला और संस्कृत में तो परंगत थे पर हिन्दी तथा अंग्रेजी से प्रायः अनभिज्ञ ही थे। तभी कुछ अन्तरंग मित्रों ने सलाह दी कि हिन्दी तथा अंग्रेजी का भी ज्ञान प्राप्त करो। विद्यासागर स्वयं भी इस कमी को अनुभव कर रहे थे। अतः उन्होंने 15/–रु. मासिक तथा 10/–रु. मासिक पर हिन्दी शिक्षक रखकर कुछ ही दिनों में दोनों भाषाओं में पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर ली।

कॉलिज की नौकरी के समय सेक्रेटरी से किसी बात पर अनबन होने पर विद्यासागर जी ने तुरन्त त्याग–पत्र दे दिया। हितैषी मित्रों ने बहुत समझाया कि नौकरी छोड़ दोगे तो निर्वाह कैसे करोगे? इस पर विद्यासागर जी ने कहा कि शाक बेचूँगा, फेरी लगाऊँगा, परचून की दूकान करूँगा, परन्तु सम्मान खोकर नौकरी नहीं करूँगा। यह उनके स्वाभिमान का जीवंत उदाहरण है।

कुछ ही समय पश्चात् कलकत्ते के संस्कृत कॉलिज में एक उच्च पद पर 150/–रु. मासिक पर उनकी नियुक्ति हो गई। किन्तु यहाँ भी आते ही इन्हें एक समस्या का सामना करना पड़ा। उस समय तक संस्कृत कॉलिज में केवल ब्राह्मणों के लड़कों को ही संस्कृत पढ़ने की अनुमति थी। विद्यासागर जी ने प्रस्ताव किया कि हिन्दू मात्र के लड़कों को संस्कृत पढ़ाई जाए। कलकत्ता सहित अनेक स्थानों के अध्यापकगण धर्मनाश की आशंका के कारण इस योजना से सर्वथा असहमत होकर विद्यासागर जी का भारी विरोध करने लगे। परन्तु विद्यासागर ने अनेक तर्क प्रस्तुत करते हुए विरोधी पण्डितों से यह भी पूछा– 'अगर शूद्रादि–वर्ण ने लड़कों को आप लोग संस्कृत नहीं पढ़ाना चाहते तो इन साहब लोगों को वेतन लेकर संस्कृत पढ़ाना कौन–सा धर्म है?' इस प्रकार की अनेक प्रबल उक्तियों से विरोधी पण्डितों को परास्त किया। परिणाम यह हुआ कि उसी समय से संस्कृत कॉलिज में सब वर्णों के लड़के दिये जाने लगे।

विद्यासागर जी ने कॉलिज के डायरेक्टर के अनुरोध पर कॉलिज की गतिविधि सम्बन्धी एक विस्तृत रिपोर्ट लिखी– इस रिपोर्ट से प्रबंधन समिति तथा स्वयं डाइरेक्टर महोदय अत्यंत प्रसन्न हुए और उनमें वेतन डेढ़ सौ से बढ़ाकर तीन सौ रुपये का दिया। रिपोर्ट में उन्होंने यह भी सुझाव दिया था कि डाइरैक्टर महोदय अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनका वेतन डेढ़ सौ से बढ़ाकर तीन सौ रुपये कर दिया।

शेष पृष्ठ 11 पर

रघुकुल के सूर्य श्रीराम

● डॉ. विजेन्द्रपाल सिंह

महाराजा रघु के कुल में जन्मे मर्यादा पालक, वेद के विद्वान्, शूरवीर, धनुर्धारी, मातृ पितृभक्त, प्रजा वत्सल जी श्रीराम का जन्म कौशल्या के गर्भ से पुनर्वसु नक्षत्र में कर्क लग्न के समय चैत्र शुक्ल नवमी को हुआ था। इनके पिता प्रतापी महाराजा अज एवं वेदवान माता इन्दुमती के पुत्र महाराज दशरथ थे।

विद्याओं के धनी राम का शौर्य सूर्य की भांति तेजयुक्त था। राम लक्ष्मण भरत व शत्रुघ्न चारों भाइयों में अथाह प्रेम था, वह एक दूसरे को देखे बिना कुछ न खाते पीते थे, न सोते थे। अल्प काल में ही उन्होंने वेद विद्या अर्जित कर ली थी गोस्वामी तुलसी दास ने लिखा है–

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई।।

विद्या, विनय–निपुण गुण शीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला।।

प्रातः काल उठि के सब भ्राता। मात पिता गुरु नावहिं माथा।।

एक बार जब महाराजा दशरथ राज सिंहासन पर बैठे प्रजा के विषय में विचार कर रहे थे तभी दरबार में दूत ने आकर बताया कि गाधिसुत महर्षि विश्वामित्र आ रहे हैं, तो महाराजा दशरथ मुख्य अधिकारियों व ब्राह्मण मण्डली को साथ लेकर ऋषि को स्वयं लेने गए और उनका यथोचित आदर सत्कार किया। महर्षि विश्वामित्र ने राजा से उनका कुशल मङ्गल पूछा। महर्षि ने राजा से प्रजा व नगर, कुटुम्ब, राज्य, राज्य के कोष के विषय में भी पूछा तत्पश्चात महर्षि तथा राजा आदि दरबार में यथास्थान बैठ गए।

इस पर महाराजा दशरथ ने महर्षि के विनम्र हो उनकी पूजा करते हुए कहा–

प्रणष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षोमहोदयः। तथैवागमनं मन्ये स्वागतम ते महामुने।।

हे ब्राह्मण आज आप मेरे सौभाग्य से आए हैं, मैं प्रसन्न हुआ। मैं आपके लिए कौन सा कार्य करूँ ? आप दान के पात्र हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया है। कृपा करके अपने आगमन का कारण बताइये जिसे मैं करना चाहता हूँ। अपनी इच्छा बताइये।

इस पर महर्षि विश्वामित्र ने यज्ञ को विध्वंस करने वाले, यज्ञों पर मांस व रुधिर की वर्षा करने वाले दो राक्षसों सुबाहु और मारीचि के नाम बताए और कहा मारने को तो मैं ही मार देता परन्तु मैं क्रोध नहीं करना चाहता। मैं यज्ञ कर रहा हूँ उसकी पूर्णाहुति होने वाली है। हे सूर्यवंश के तेज। मेरे साथ राम व लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए भेज दीजिए। यह मांग सुन महाराजा दशरथ अवाक् से रह गए फिर बोले

मागहुँ भूमि धन कोषा। सर्वस देऊँ आज सह रोषा।

देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देऊँ निमिष इक माहीं।।

दशरथ ने कहा हे ऋषि ! मेरे पुत्र अत्यन्त सुकुमार है इनके आगे वह राक्षस अति बलवान है, क्रूर हैं। अतः मैं राक्षसों का संहार करने अक्षौहिणी सेना लेकर मैं आपके साथ चलता हूँ इन्हें छोड़ देवें।

इस पर विश्वामित्र ने दशरथ से कहा कि "हे राजन तू राम के बल को नहीं जानता वह सभी शस्त्रविद्या, युद्धविद्या सभी को भली भांति जानता है। राम के सामने यह दो राक्षस तो क्या सहस्रों राक्षस रूई के ढेर की भाँति हैं। हे पृथ्वीपति ! तेरे बालकों को किसी प्रकार का कष्ट न होगा और हे राजन् राम के अतिरिक्त वह राक्षस किसी अन्य शक्ति से मर नहीं सकते।

यही नहीं विश्वामित्र ने जब बताया कि क्रूर, महाक्रूर उग्रस्वरूप के राक्षस पौलस्त्य वंश के महाबलऽधारी राजा रावण ने इन्हें भेजा है। तू राम को इस पुनीत कार्य के लिए भेज दे। इस बात को सुन रावण के नाम से दशरथ घबरा गए और कहा हे ऋषि ! मैं उस दुष्ट के विरुद्ध लड़ने योग्य नहीं आप मुझे व मेरे पुत्र को न ले जावें। रावण के साथ तो देव, दानव, पन्नग, यक्ष, पतंग आदि भी युद्ध नहीं कर सकते। विश्वामित्र ने दशरथ के मनोबल की स्थिति देखकर अति कोप से कहा हे दशरथ। पृथ्वीपति अपनी प्रतिज्ञा पर ध्यान दे। तू जिस कुल में पैदा हुआ है वह राघव कुल तेरी विचारधारा से अलग उलट है। राघव कुल में प्रतिज्ञा व मर्यादा का पालन किया जाता है।

पूर्वमर्थ प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि। राघवाणामयुक्तोऽयं कुलास्यास्य विपर्ययः।। – बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग–21

रघुकुल में जो वाणी से बोला जाता है वह कार्य किया जाता है। वचन के आगे प्राण भी कुछ नहीं है। दशरथ! रघुवंशियों का यश तीनों लोकों में फैला हुआ है इसलिए धर्म व प्रतिज्ञा का पालन कर।

इसके पश्चात् जब विश्वामित्र ने कटु वचन कहे तो दशरथ अपने दोनों पुत्रों को वन में भेजने को तैयार हो गए। तत् पश्चात् अग्निहोत्र व स्वस्तिवाचन कर ईश्वर से कल्याण की प्रार्थना कर राम को सम्पूर्ण अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित कर अति उत्साह व गर्व से राम लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेज दिया।

यहीं राम थे जिन्होंने अनेक राक्षसों का संहार किया और राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास जाकर लंकाधिपति रावण का भी नाश किया तथा चक्रवर्ती राज्य किया। उनकी कीर्ति सम्पूर्ण पृथिवी पर थी। राम के राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखी थी। राम के राज्य में कोई कुपात्र न था, सब सत्यवादी थे। प्रजा में सभी वेद के विद्वान होते थे, कोई वेद निन्दा करने वाला न था। सबके पास गाय घोड़े व धन था। ब्राह्मण वेद के विद्वान थे, वेद की ही चर्चा करने वाले थे, सबका आचरण व व्यवहार प्रिय था कोई भी तो लोभी कामी न था, कोई क्रोधी घातक व क्रूर न था, कोई अन्यायी नहीं था। राम राज्य में आकाश, वायु, जल आदि के युद्ध के सभी अस्त्र शस्त्र, कारीगर, उत्तम प्रकार के घोड़े, हाथी आदि थे। गुरुकुल व आश्रम थे। वेद की ऋचाओं के स्वर घर घर से गुँजायमान होते थे। ऐसा सुन्दर था राम का राज्य।

गली नं. 2, चन्द्र लोक कॉलोनी
खुर्जा 203131

☞ पृष्ठ 3 का शेष

घोर घने जंगल

यह मन वश में कैसे रहता है ? श्री कृष्ण भगवान् ने कहा–

मनःप्रसादःसौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।

यह मन प्रसाद गुण से, प्रसन्न रहने से वश में रहता है। शान्त, गम्भीर और मधुर रहने से वश में रहता है। और फिर मौन रहने से, थोड़ा बोलने से वश मे रहता है। जो लोग अधिक बोलते हैं, बैठे–बैठे जमीन–आसमान के कुलाबे मिलाते रहते हैं, बोलते है तो बोलते ही चले जाते हैं, उनके मन में कभी शान्ति नहीं आती, उनका मन कभी वश में नहीं रहता। यह दूसरी बात है।

पहले प्रसन्न रह, चिन्ता न कर, निराश मत हो, हँसता रह, मुसकराता रह और फिर मितभाषी बन। मित भाषण, मिष्ट भाषण और मित आहार। थोड़ा बोलनेवाले, मीठा बोलनेवाले और थोड़ा खानेवाले का मन उसके वश में रहता है। कड़वा न बोल, बहुत न बोल, हर समय पेट की पूजा न करता रह। हर समय स्वाद ही न देखता रह। इतना खा जिससे जीवन बना रहे। यह है मन को वश में रखने का उपाय।

परन्तु,क्यों जी, ये तो साढ़े नौ हो गये न ? और अभी तो मुझे बहुत–कुछ कहना है। अभी तो गीता के केवल तीन ही श्लोक हुए और शेष दिन रह गये दो।।

[एक आवाज आई–दो नहीं तीन शेष हैं; आज मंगल है।]

स्वामी जी–तब तो तीन दिन शेष हैं परन्तु वह तीसरा दिन तो न होने के समान है।

[एक और आवाज–कल से कथा आठ बजे आरम्भ कर दीजिये।]

स्वामी जी–डेढ़ घण्टा बोला करूँ ? न भाई ! मैं आपसे कहता हूँ–थोड़ा बोलो। आप मुझको ही बहुत बोलने को कहते हो। ऐसे नहीं; एक घण्टा ठीक है।

अच्छा तो शेष कल सही। ओम् शम्

☞ पृष्ठ 5 का शेष

आर्य समाज के स्थापना....

सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उदेश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9. प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

लाला मूलराज एम.ए. जो लाहौर आर्य समाज के प्रथम प्रधान थे ने 1892 में अपने एक भाषण में कहा था–

स्वामी दयानन्द बहुत बुद्धिमान व्यक्ति थे। उन्होंने आर्य समाज के नियमों में सैद्धान्तिक अथवा अपनी मान्यताओं को शामिल नहीं किया। उन्होंने आर्य समाज को सर्व स्वीकार्य और व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है।

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

हिन्दी तथा हिन्दुत्व के प्रचारक महात्मा वेदभिक्षु जी

● शिव कुमार गोयल

महात्मा वेदभिक्षु जी एक अनूठे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके हृदय में वैदिक धर्म तथा हिन्दुत्व के प्रति अगाध निष्ठा तो थी साथ ही उनमें ऐसा तेज और ओज भी था जो वैदिक धर्म को चुनौती देने वाले तत्वों को भस्मीभूत कर डालने की क्षमता रखता था।

आदरणीय वेदभिक्षु जी जब दिदेशी ईसाई मिशनरियों के हिन्दुओं के धर्मान्तरण के घातक षडयन्त्र का समाचार किसी पत्र–पत्रिका में पढ़ते थे तो उनका हृदय हाहाकार कर उठता था। जब देश के किसी भाग में कट्टरपंथी मुल्ला–मौलवियों की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों को प्रोत्साहन देने का समाचार उनकी आंखों के सामने आता तो उनकी आंखें लाल हो उठती थीं। वे प्रायः कहा करते थे कि सेकुलरिज्म की आड़ में आज भारत के हिन्दू समाज को अल्पसंख्यक बनाने का षड्यंत्र रचा जा रहा है। यदि हिन्दू संगठनों ने संगठित होकर इसका प्रतिकार नहीं किया तो भारत का एक और विभाजन होकर रहेगा।

महात्मा जी चाहते थे कि आर्य समाज, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, सनातन धर्म सभा, हिन्दू महासभा आदि सब हिन्दूवादी दल एकजुट होकर देश के ईसाईकरण व इस्लामीकरण के षड्यंत्रों को असफल करने की रणनीति बनाए। हिन्दू महासभा के तेजस्वी नेता प्रो. रामसिंह जी के बीडनपुर स्थित निवास स्थान पर पहुंचकर प्रोफेसर साहब से कहा करते थे "आप ही इस दिशा में कुछ कीजिए। यदि हिन्दू अल्पसंख्यक हो गया तो भारत दूसरा पाकिस्तान बन जाएगा। आप इस दिशा में पहल कीजिए मैं इस योजना को सफल बनाने में प्राण–प्रण से जुट जाऊंगा।"

एक बार वे पिलखुआ पधारे तो मेरे पिताश्री भक्त रामशरण दास जी से उन्होंने कहा भक्त जी, स्वामी करपात्री जी तथा शंकराचार्यों से संपर्क करके इस समय सबसे पहले हिन्दू संगठन के राष्ट्रीय कार्य को आगे बढ़ाने की योजना बनाई जानी चाहिए। आद्य शंकराचार्य जी की जन्मस्थली केरल के कई जिले मुस्लिम बहुल बनाए जा चुके हैं। चारों पीठों के शंकराचार्यों को केरल के गांव–गांव में पहुंचकर इस्लामीकरण के षडयंत्र को असफल करना चाहिए।

उस दिन मैंने श्री वेदभिक्षु जी के हृदय में धधकती हिन्दूधर्म की रक्षा की ज्वाला को निकट से देखा था। आर्य समाज का एक वर्ग 'हम हिन्दू नहीं, आर्य हैं। हिन्दू विदेशी शब्द है, हिन्दू किसे कहते हैं' जैसे प्रश्न उछालता तो वेदभिक्षु जी उन्हें समझाते कि हिन्दू शब्द प्राचीन है। आर्य और हिन्दू एक–दूसरे के पर्याय हैं।

हिन्दू किसे कहते हैं इसका विश्लेषण करते हुए महात्मा वेदभिक्षु जी ने एक बार लिखा था–

"भारत के सभी वासी जो उस धरती का वन्दन करते हैं, मां को, भारत मां को पूज्य, वन्दनीय और पावन समझ 'वन्देमातरम्' गाते हैं, गंगा–यमुना–सरस्वती, वेद–गौ–गंगा–गायत्री के प्रति जिनकी निष्ठा है, जो समवेत स्वर में द्वारिका से निकोबार तक की सारी धरती पर फहराते राष्ट्रध्वज के प्रति समर्पित हैं, वे सभी हिन्दू हैं।

राम–कृष्ण की गाथाएं सुन जिनका मस्तक गौरव से तन जाता है, प्रताप–शिवा का शौर्य वर्णन जिन्हें नवजीवन देता है। दर्शन–अध्यात्म–आत्मचिन्तन जिनके मानस में अमृत बरसाता है, जो भारत की मिट्टी के प्रत्येक कण पर हजार कोहिनूर न्यौछावर कर सकते हैं, वे सब हिन्दू हैं। हम उन्हें भी हिन्दू कहते हैं, जिनका मानस भारत–पाक युद्ध में भारत की विजय के समाचार से उछलता है जो खेलों के प्रांगण में भारत की जय ध्वनि पर तालियां बजाते हैं, जिनके घर–आंगन में प्यार के गीत और मिलन के राग स्वयं मचलते हैं। जो गंगा की लहरों पर गूजते संगीत के आरोहों–अवरोहों पर झूमते हैं, वे शीश कटा सकते हैं, अर्चना में सर्वस्व समर्पित कर सकते हैं, मां की पूजा में जो स्वयं को विस्मृत कर झूम–झूम जाते हों जो हिमगिरि के मुकुट पर त्रैलोक्य का साम्राज्य भी न्यौछावर कर सकते हों, वे सब हिन्दू हैं।

ऐसे सभी राष्ट्रभक्तों को हम हिन्दू कह अपने को धन्य मानते हैं। जो हिन्दू हैं, वे राष्ट्र भक्त हैं। जो राष्ट्रभक्त हैं, वे हिन्दू हैं। हिन्दू शब्द अब न जातिवाचक है, न किसी मत का प्रतीक। वह भारतीयता का प्रतीक है। वह ध्वज है उस पावन संदेश का जिसके पीछे मातृभूमि के प्रति सिर कटाने की भावना है।

किन्तु जो हिन्दू नहीं, वह देशभक्त नहीं। मत परिवर्तन होते ही राष्ट्र भक्ति में परिवर्तन आ जाता है। इसलिए हमने संकल्प किया है कि हम भारत में किसी भी देशभक्त को देशद्रोही बन कर नहीं बढ़ने देंगे। विदेशी शक्तियां भारत को हड़पने की चेष्टा में धन–बल से षड्यंत्र कर रही हैं। किंतु भारत के देशभक्त उनके कुत्सित चिन्तन को विफल करने के लिए कृत संकल्प होकर जुट गए हैं। मेरी धरती की पावन माटी को कुलषित करने के लिए हिन्दू को हिन्दू का शत्रु बनाने का प्रयत्न सफल होना क्या हम सबके लिए कलंक नहीं है ? क्या भौतिक साधनों से ईमान खरीदा जाएगा ? क्या भारत का मानस चांदी के टुकड़ों पर बिक जाएगा ? क्या देश की धरती के बेटे विदेशियों की गर्हित चालों से विद्रोही बन अपनी मां को मृत्यु की ओर धकेलेंगे ? इन प्रश्नों के साथ हम फिर यही संकल्प दुहराते हैं कि नहीं अब हम और नहीं रुकेंगे और एक भी हिन्दू को इसाई या यवन नहीं बनने देंगे। हम हिन्दू हैं–यह राष्ट्रीय स्वर है। हिन्दू सम्प्रदाय विशेष नहीं। हिन्दुत्व राष्ट्र को पवित्र करने वाली गंगाधारा है। यह वह स्वर है जो मां का बेटा मां को पुकारते हुए कहता है, मां.... मां.... जो मां को मां कहता है, वह हिन्दू है। आओ, हम उसकी वन्दना करें–हम उसकी अर्चना करें।

'राष्ट्रं रक्षाम' का मंत्र हिन्दू ही गुंजा सकता है, वही गुंजाएगा और देश को बचाएगा। उनके एक–एक शब्द में ओज और तेज प्रस्फुटित होता था। जब वे भाषण देते थे तो श्रोता मंत्रमुग्ध होकर सुनते थे। वे वाणी और लेखनी दोनों के धनी थे।

महात्माजी स्वामी दयानन्द, श्रद्धानंद जी, बलिदानी महाराज राजपाल, स्वातंत्र्य वीर सावरकर, भाई परमानन्द जी के प्रति अनन्य श्रद्धा भावना रखते थे। कांग्रेसियों, कम्युनिस्टों तथा समाजवादियों की हिन्दू विरोधी तथा मुस्लिम तुष्टीकरण की घातक नीतियों पर वे लेखनी और वाणी के माध्यम से प्रबल कुठार करने की क्षमता रखते थे। उनके लेखों व भाषणों को कई बार आपत्तिजनक करार देकर मुकदमे चलाए गए किंतु वे कभी विचलित नहीं हुए। उनकी सहधर्मिणी आदरणीया पंडिता राकेशरानी उन्हीं की तरह धर्म व संस्कृति की रक्षा में पूरे दमखम के साथ सक्रिया हैं।

राष्ट्रीयता के मुख्य प्रहरी, तेजस्वी निर्भीक पत्रकार, चित्रक तथा वेदों के अनन्य प्रचारक की पावन स्मृति में मेरा नमन है।

☞ पृष्ठ 8 का शेष

आर्य समाज के स्थापना....

आर्य समाज का देश की आबादी में योगदान:–

1907 में पंजाब के लै. गवर्नर का कथन था कि उसके अधिकारियों की सूचना के अनुसार जहां भी आर्य समाज है वही पर उपद्रव और अशान्ति फैल जाती है। मैं समझता हूं कि यह कहकर गवर्नर ने आर्य समाज को सर्वश्रेष्ठ प्रशस्ति पत्र दिया है। मानसिक अशान्ति बड़ी पावन होती है। अशान्ति के बिना प्रगति नहीं होती। शान्ति और निष्क्रियता राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण नहीं करती वरन् शक्ति, कार्य आरंभ करने का उत्साह, जिम्मेवारी की भावना और विद्रोह की शक्ति, दुरितों के खिलाफ विद्रोह की शक्ति आवश्यक होती है।

आर्य समाज का सामाजिक आधार:–

1. ईश्वर में पितृभाव और मनुष्य मात्र में भ्रातृभाव।

2. स्त्री और पुरुष में समानता।

3. मनुष्य मनुष्य और राष्ट्र–राष्ट्र के प्रति न्यायोचित व्यवहार।

4. जाति प्रथा और ऊंच नीच का भाव एक अभिशाप–हिन्दू समाज में सुधार का एक महान कार्य जो आर्य समाज ने किया वह है हिन्दुओं में दलित और मानी जाने वाली जातियों के अधिकारों की रक्षा करना तथा अन्य उच्च जातियों के समान स्तर पर आर्य समाज में प्रवेश दिलाना।

5. स्त्री पुरुष की बराबरी:–

1. कन्याओं को लड़कों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सर्वप्रथम आर्य समाज ने दिलाया।

2. वर और वधू के चुनाव में व्यस्क Adult और शिक्षित लड़का और लड़की के अधिकार को मान्यता दी।

6. हिन्दू रक्षक आर्य समाज:–

पौराणिक कट्टरपन्थियों के व्यवहार के कारण जो दलित और अछूत कहलाने वाले भाई हिन्दू धर्म को छोड़कर ईसाई और मुसलमान हो रहे थे, आर्य समाज ने उन्हें गले लगाया। इनको यज्ञोपवीत पहनाए और यज्ञ करने का अधिकार दिलाया।

परन्तु आज भी समाज और देश के प्रति आर्यसमाज के बहुत कर्त्तव्य शेष हैं यथा–

1. बढ़ते हुए नशीले पदार्थ के सेवन के खिलाफ प्रचार कार्य।

2. कन्या भ्रूणहत्या के खिलाफ आन्दोलन।

3. भ्रष्टाचार के खिलाफ देशव्यापी आन्दोलन।

आज फिर उसी शक्ति और उत्साह की आवश्यकता है और मैं समझता हूं आर्य समाज और डी.ए.वी. के पास वह शक्ति है जिसके द्वारा वह योजनाबद्ध तरीके से इन बुराईयों के खिलाफ संघर्ष कर सकता है और राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जाने में सक्रिय योगदान दे सकता है।

स्वामी दयानन्द मार्ग
अम्बाला शहर।

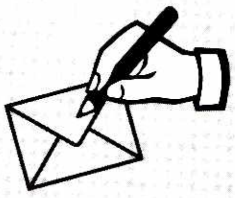

पत्र/कविता

"ईश्वर तू महान् है"

ईश्वर तू महान है, सबका रखता ध्यान है,
तेरा ही एक आसरा, सब सुखों की खान है।

पृथ्वी और आकाश बनाए, नदी और नाले खूब सजाए,
सूरज, चन्दा को चमकाए, जो देते हमको प्राण हैं।
ईश्वर तू महान् है, सबका रखता ध्यान है।

पेड़ और पौधे उगाए तुमने, फल और फूल खिलाए तुमने,
मीठे रसों से सरसाए तुमने, जो देते हमको जीवन दान हैं।
ईश्वर तू महान है, सबका रखता ध्यान है।

जंगल पर्वत बनाए तुमने, जल और वायु बहाए तुमने
चारों वेद रचाए तुमने,जो देते हमको ज्ञान हैं
ईश्वर तू महान् है, सब का रखता ध्यान है।

सच्चे मन से ध्याया तुमको, तन और मन लगाया तुमको
हर वख्त हृदय में पाया तुमको, "खुशहाल" बन किया अमृतपान है।
ईश्वर तू महान् है, सब का रखता ध्यान है।

खुशहाल चन्दआर्य
180 एम.जी रोड (दूसरी मंजिल)
कोलकाता – 700007

बुद्धिजीवी चिन्तन करें

केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री श्री शशि थरुर ने भारतीय छात्रों को अंग्रेजी भाषा में पारंगत होने की सलाह दी है। क्या यह उचित है?

प्रश्न यह है कि हमारे देश में विभिन्न प्रदेशों में अलग–अलग भाषाओं का प्रयोग होता है। संविधान में स्पष्ट रूप से हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा का दर्जा मिला है। सदियों से भारतीय विदेशों में व्यापार करते आ रहा है जबकि उस समय अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग यदा–कदा ही होता था। यह भी उल्लेखनीय है कि विश्व के अधिकांश खाड़ी देशों में आज भी उर्दू या फारसी या अरबी भाषा को मान्यता प्राप्त है तथा उर्दू, फारसी या अरबी भाषा का चलन है। केवल इतना ही नहीं सिंगापुर, थाईलैण्ड, मलेशिया, चीन, जापान आदि देशों में अंग्रेज़ी भाषा के समझने वाले नगण्य हैं। अधिकांश बाज़ारों में विज्ञापन पर या उपभोक्ता सामग्री पर भी अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग नहीं होता। विदेशी राजनियक भी अपने साथ ढभाषिया रखते हैं जो अंग्रेजी भाषा में वार्तालाप का सहयोग प्रदान करते हैं।

समस्त यूरोप के देशों में शिक्षा का माध्यम ग्रीक भाषा है। चीन के नवनियुक्त राष्ट्रपति शी जिनयिंग ने अंग्रेज़ी भाषा के अध्ययन, प्रचार, प्रसार पर प्रतिबन्ध लगा दिया है? इजरायल में केवल हिब्रू भाषा का ही प्रयोग होता है। जापान, जर्मनी में आपको अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग देखने को नहीं मिलेगा।

प्रश्न यह है क्या हमारी भारतीय भाषा वास्तव में इतनी जीर्ण शीर्ण है? क्या हमारे देश में कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जिसको हम गर्व के साथ प्रयोग कर सकें? क्या मानव संसाधन मंत्री जी की सलाह वास्तव में हमारे देश के युवाओं का उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान करने में सहायक होगी? क्यों न हम भारतीय संविधान में संशोधन कर अंग्रेजी भाषा को प्रमुख भाषा का स्थान प्रदान करके तथा भारतीय भाषाओं को समस्त मान्यता प्राप्त शिक्षा स्थलों से पूर्णतया प्रतिबन्धित कर दें। समय–समय पर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के जो कार्यक्रम आयोजित होते है वह प्रथा समाप्त कर दी जाये।

क्या वास्तव में भाषा हमारी संस्कृति की परिचायक है? क्या अन्य भाषा को अपनाने से हमारी संस्कृति लुप्त हो जायेगी। क्यों प्रतिबंधित है चीन में अंग्रेजी भाषा का प्रचार–प्रसार? चीन विश्व की सबसे प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप उभर कर आ रहा है? क्या चीन के युवा अन्य देशों में शिक्षा ग्रहण नहीं करते? विश्वास है कि हमारे बुद्धिजीवी चिंतन कोगे? और देश के युवा का मार्ग प्रशस्त होगा।

****

ऐसे लोगों को कैसा पाठ पढ़ायें

महर्षि दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज संसार भर में छाया हुआ है। सभी उसके ऋणी हैं। अन्त समय तक भी उऋण नहीं हो सकेंगे। आर्य समाज की धारा में कुछ ऐसे लोग भी बह चले हैं जिन्हें तैरना नहीं आता। तैरने का ढोंग करते हैं। किनारों से टकराते हुए लहू लूहान हो जाते हैं और दोष आर्यसमाज को देते हैं। देखा–देखी इस समाज में नहीं चल सकते हैं। अपने को उसके योग्य बनाना चाहिए। सिर्फ चाहने से योग्य नहीं बन सकते हैं, त्याग, तपस्या, कर्मठ होना चाहिए। चोरी का कम्बल नहीं, स्वयं बुनकर केवल ओढ़ना चाहिए। गर्व से सिर ऊंचा करके चल सकते हैं।

आर्य समाज रूपी विशाल वट वृक्ष की कुछ डालियाँ कमज़ोर पड़ जाती हैं तो टूटकर गिर जाती हैं। कहते है वृक्ष ने हमें गिरा दिया। हमारे टापू में भी कुछ डाँवाडोल मानसिकता वाले पंडित पंडितायें बन वैठे हैं। सीमित ज्ञान वाले हैं। कुछ अलग से नया स्वाध्याय नहीं करते हैं। मथे हुए पानी को ही मथते रहते हैं जिससे समाज की ही हानि होती है। कुछ पंडित पौराणिक कर्मकाण्ड के साथ आर्य समाज के कर्मकाण्ड भी चोरी–छुपे निभाते हैं। दक्षिणा रूपी लालच के कारण हनुमान की ध्वजा भी उड़ाने चले जाते हैं। और पंडिताएँ भी एक–दो मिल जायेंगी जो पीपल के पेड़ का चक्कर लगाती हैं धागे हाथ में लिये। पता नहीं क्या मन्नत की मागते हैं। यहां पर तमिल–तेलूगु लोग तलवार पर चढ़ते हैं, आग पर चलते हैं। साधारण लोगों के अलावा एक पंडिता भी पकड़ी गयी। कहती है बेटे के लिये मन्नत मांगी थी, इसलिए गयी थी। उनके जिम्मे बड़ी सभा की ओर से चार–पांच में हर मास जाना होता है। समाजों में जाकर किस स्वामी का प्रचार करेगी? किस समाज के पथिक लोगों को बनायेगी? भगवान ही जाने । जिसे अपने पर विश्वास नहीं, मानव निर्माण का कारखाना आर्य समाज पर विश्वास नहीं। अपने उद्धारक महर्षि दयानंद सरस्वती पर विश्वास नहीं, वह दूसरों को किस विश्वास का पाठ पढ़ायेगी या पढ़ायेंगे, वैसे लोग समाज के पालक नहीं घातक हैं। वैसे लोगों को क्या पाठ पढ़ायें कैसा पाठ पढ़ायें। सोचनीय मुद्दा है।

सोनालाल नेमधारी

****

कथायें जीवन को सफल बनाने वाली होती हैं

"आर्य जगत्" पत्र में पढ़कर कि श्री पूनम सूरी जी सम्पादक "आर्य जगत्" को सर्वसम्मति से फिर से प्रधान निर्वाचित किया गया है। मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। मैं उन्हें अपनी व परिवार की ओर से हार्दिक धन्यवाद व बधाई देता हूँ। आप आर्य समाज के बड़े पुराने कर्मठ कार्यकर्ता हैं व समिति को सुचारूरुप से चलाने का श्रेय भी आपको ही जाता है। "आर्यजगत" पत्र में स्व. महात्मा आनन्द स्वामी जी के मधुर, शिक्षाप्रद आध्यात्मिक कथायें छपती रहती हैं जो हर व्यक्ति के कल्याणार्थ जीवन को सफल बनाने वाली होती हैं। मैं 88 वर्षीय वयोवृद्ध दोनों कुल्लियां टूटने कारण चलने फिरने में असमर्थ हूँ। आपके दर्शन करना चाहता हूँ। यह मेरी अभिलाषा है।

भरत सिंह आर्य
"आर्य भवन"
176, A, शांतिनगर, असंध रोड, पानीपत,

****

☞ पृष्ठ 7 का शेष

पं. ईश्वरचन्द्र....

इसी रिपोर्ट में उन्होंने यह भी सुझाव दिया था कि बंगला के विभिन्न संस्थानों पर नॉर्मल स्कूल खोलकर उनमें पढ़ाने वाले शिक्षक तैयार किये जाएं। इस प्रस्ताव के आधार पर इन्हें अतिरिक्त शिक्षा इन्सेपक्टर बनाकर 250/–रु. अतिरिक्त मासिक वेतन दिया गया। इस प्रकार इन्हें कुल 500/–रु. मासिक मिलने लगे।

इस बीच शिक्षा कमेटी के डाइरेक्टर कुछ समय के लिये छुट्टी पर इंग्लैण्ड चले गये और उनके स्थान पर डब्ल्यू गार्डन यंग नामक एक युवक को नियुक्त किया गया। जबकि विद्यासागर जी ने किसी अनुभवी और प्रौढ़ व्यक्ति को पद पर रखने की सलाह दी थी। यद्यपि विद्यासागर प्रत्येक कार्य को बड़े योजनाबद्ध और व्यावहारिक ढंग से आगे बढ़ाते थे, परन्तु मि. डी. जी. यंग उनकी हर योजना में मीन–मेख निकालते और जब ये योजनाएँ गवर्नर के पास जातीं तो निर्णय प्रायः विद्यासागर जी के पक्ष में ही होते थे। इससे मि. यंग और कुढ़ने लगे। इस पद पर रहते हुए विद्यासागर जी ने अनेक कन्या विद्यालय भी स्थापित किये जिससे बंगाल में लड़कियों की शिक्षा का काफी प्रचार हुआ। परन्तु नये डाइरेक्टर ने इस योजना पर खर्च होने वाले बिल अस्वीकार कर दिये, क्योंकि वह विद्यासागर को आगे बढ़ते हुए नहीं देखना चाहते थे। श्री विद्यासागर को मि. यंग की इस ओछी हरकत से बहुत कष्ट हुआ। इस प्रकार दोनों के बीच मतभेद की खाई चौड़ी होती चली गई।

सन् 1857 में कलकत्ते में यूनिवर्सिटी का सूत्रपात हुआ। इसके सदस्यों में श्री विद्यासागर भी थे। कुछ समय पश्चात् यूनिवर्सिटी से संस्कृत कॉलिज को हटा देने का प्रस्ताव हुआ। अंग्रेजों ने तो इस प्रस्ताव का समर्थन किया ही, अनेक बंगाली महानुभाव भी इसके अनुमोदन में खड़े हो गये। श्री विद्यासागर के सामने फिर कठिन परिस्थिति उपस्थित हुई। परन्तु संकट और विरोध के सामने उन्होंने झुकना सीखा ही न था। अतः अनेक प्रबल उक्तियाँ और अकाट्य तर्क प्रस्तुत कर समस्त विरोधियों के मुख उन्होंने बन्द कर दिये। परिणामस्वरूप वह संस्कृत कॉलिज आज भी विद्यासागर जी के गौरव की घोषणा करते हुए संस्कृत के प्रचार में संलग्न है।

इधर नये डाइरेक्टर मि. यंग के पग–पग पर अनुचित हस्तक्षेप के कारण विद्यासागर ने अगस्त 1858 में 500/–रु. मासिक की यह नौकरी भी छोड़ दी। क्योंकि अकारण ही आत्म सम्मान को ठेस उन्हें सहन नहीं थी। स्वाभिमान की रक्षा का उनके जीवन में यह दूसरा महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

साहित्य सेवा: विद्यासागर जी से पहले बंगला 'साहित्य' नाम के योग्य ही न था। वैसे वे नौकरी करते समय भी साहित्य– रचना करते रहते थे, परन्तु नौकरी से पृथक होकर तो वे विशेष रूप से साहित्य–सृजन में प्रवृत्त हो गये। उन्होंने कुल मिलाकर 52 ग्रन्थों की रचना की। जिनमें 17 संस्कृत के, 5 अंग्रेजी के तथा शेष बंग भाषा के ग्रन्थ हैं। कुछ शिक्षा सम्बन्धी तथा अधिकांश समाज सुधार सम्बन्धी उच्चकोटि के ग्रन्थ है।

नारी सुधार: बंगाल में नारी उत्थान के क्षेत्र में काफी पहले से प्रयास प्रारम्भ हो चुके थे। सन् 1829 में राजा राम मोहनराय ने सती प्रथी के विरुद्ध एक कानून बनाया था। शिक्षा के क्षेत्र में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने शिक्षा विभाग के अतिरिक्त–इन्सपेक्टर के रूप में अनेक कन्या विद्यालयों की स्थापना की, जिससे बालिकाओं में शिक्षा का तेजी से प्रचार हुआ, यद्यपि तत्कालीन कुछ उच्च अधिकारियों ने इस कार्य में रोड़े भी अटकाये। यह आप देख चुके हैं।

उस समय समस्त देश में, विशेषकर बंगाल में बाल–विवाह, वृद्ध विवाह तथा बहु विवाह प्रथा की कुप्रथा जोरों पर थी। बाल विवाह का उदाहरण तो वे स्वयं ही थे। उस अल्पायु में विवाह होना एक आम बात थी। अनमेल विवाह भी तत्कालीन समाज का कोढ़ था– इसके मूल में छोटी–छोटी बालिकाओं को नारकीय जीवन की यातनाएँ झेलनी पड़ती थीं। वृद्ध विवाह तथा अनमेल विवाह का पीड़ादायक परिणाम अपने गुरु श्री शम्भुनाथ वाचस्पति के रूप में उन्होंने प्रत्यक्षः देखा ही था। इन भयानक कृत्यों का फल अबलाओं को वैधव्य के रूप में भोगना पड़ता था। इन सब कारणों से इस हृदय विदारक प्रथा को दूर करने का विचार उनके मन में घुमड़ रहा था।

जब यह प्रश्न उठा कि विधवा–विवाह होना चाहिए या नहीं उस समय केवल बंगाल में ही नहीं सारे देश में अनेक साधारण गृहस्थ लोग अपनी कन्याओं के विधवा विवाह की आवश्यकता का निरन्तर अनुभव कर रहे थे, किन्तु तथाकथित धर्मधारी पण्डितों के भय तथा रुढ़िवादी सामाजिक परम्परा के कारण कोई व्यक्ति इस दिशा में आगे आने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। ऐसे में किसी साहसी तथा प्रतापी मार्गदर्शक नेता की आवश्यकता थी।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने सर्वप्रथम इस अमानुषिक समस्या के समाधान के लिये परिश्रमपूर्वक शास्त्र मंथन किया तथा अपने पक्ष में मिले अकाट्य प्रमाणों के आधार पर एक पुस्तक तैयार की तथा लोगों का मत जानने के लिए तत्कालीन प्रसिद्ध पत्रिका 'तत्त्वबोधिनी' में उन्होंने इस विषय पर क्रमशः लेख लिखने प्रारम्भ किये। न केवल सर्वसाधारण, अपितु उच्च शिक्षित समाज में भी विधवा–विवाह सम्बन्धी इन लेखों को भारी समर्थन मिला। बंगाल प्रान्त में इस विचार का तेजी से प्रचार हुआ और बुद्धिमान लोगों ने इस कार्य का पुरजोर समर्थन किया।

इस समर्थन से उत्साहित होकर विद्यासागर ने 'विधवा–विवाह' नामक पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। एक सप्ताह के भीतर ही दो हजार पुस्तकों का यह संस्करण बिक गया। इससे उत्साहित होकर दूसरी बार तीन हजार पुस्तकें छपवाईं। वे भी एक माह के भीतर समाप्त हो गईं। इसकी लोकप्रियता तथा उपयोगिता देखकर तृतीय संस्करण में दस हजार पुस्तकों के छपते ही कुछ विरोधी तत्त्वों ने शोर मचाना शुरू कर दिया। साथ ही उसके उत्तर में विधवा–विवाह के विरोध में एक पुस्तक भी प्रकाशित की। विद्यासागर जी ने इस विरोध और पुस्तक को देखकर शास्त्रीय प्रमाणों के ठोस आधार पर विरोधियों को मुँह तोड़ उत्तर दिया। इस प्रत्युत्तर के प्रकाशित होते ही विरोधी पण्डितों की पोल खुल गई। इससे जन–साधारण में यह दृढ़ विश्वास पैदा हुआ कि 'विधवा–विवाह' शास्त्रानुकूल है। फिर क्या था? अनेक कुलीन ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की विधवा कन्याओं के विवाह होने लगे। इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि **"स्वयं विद्यासागर जी ने अपने पुत्र नारायण चन्द्र वन्द्योपाध्याय का विवाह भी एक विधवा कन्या के साथ कराया।"** तब तो तृतीय संस्करण के पश्चात् चतुर्थ संस्करण भी शान के साथ प्रकाशित हुआ और लोगों ने चाव से खरीदा।

इतने पर भी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर शान्त होकर नहीं बैठे। उन्होंने रात–दिन लग कर तीस हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवा सरकार को भेजकर **'हिन्दू विधवा–पुनर्विवाह एक्ट'** पास कराया। इस लेख में सम्पूर्ण एक्ट को तो देना संभव नहीं है। परन्तु उसका मूल तत्त्व यह है कि इस "कानून के द्वारा विधवा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र स्वजात पुत्र कहलाकर पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होगा। प्रत्येक हिन्दू विधवा का पुनर्विवाह जायज है। विधवा की पुनर्विवाहित पति से जो सन्तान होती है वह जायज सन्तान अपने पिता की होती है और उसकी सम्पत्ति की भी उत्तराधिकारी होती है।" (हिन्दू विधवा पुनर्विवाह एक्ट 1856 पर आधृत)

इस कानून के बनाने से लोगों को बड़ी राहत मिली और हिन्दू जनता में जो अबला, विधवा नारियों की दुर्गति हो रही थी, उससे बड़ा लाभ हुआ। यद्यपि इस कानून से पूर्णतया विधवा–नारियों का सर्वथा कल्याण हुआ हो, इस पर तो आज भी प्रश्न चिह्न लगा है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अपनी पूरी शक्ति, ईमानदारी और जातीय उद्धार की भावना से प्रेरित हो इस कठिन समस्या का द्वार उन्मुक्त किया। इसलिए उनका नाम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम श्रेणी के समाज सुधारकों में लिखा जाएगा।

24/4, बिशन स्वरूप कॉलोनी
पानीपत–132103
दूरभाष: 0180–2643700

बम्बई में हुआ अखिल भारतीय वैदिक सम्मेलन

वैदिक मिशन मुम्बई एवं संस्कृत अकादमी, दिल्ली के सुयक्त तत्वाधान में आर्य समाज सांताक्रुज में अखिल भारतीय वैदिक संस्कृत सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस बृहद् कार्यक्रम की अध्यक्षता स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी ने की तथा संचालन वैदिक मिशन मुम्बई के अध्यक्ष डा. सोमदेव शास्त्री जी ने किया। इस सम्मेलन मे स्वामी धर्मानन्द जी, स्वामी धर्मेश्रवरानन्द जी, स्वामी आर्यवेश जी, दिल्ली संस्कृत अकादमी के सचिव डा. धर्मेन्द्र कुमार तथा उपाध्यक्ष प्रो. शशिप्रभा कुमार जी, आदि ने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों पर अपने व्याख्यान दिए।

इस अतिरिक्त भारत के कोने–कोने से आये अनेक विद्वानों ने अपने भाषण दिए एवं अपने शोध पत्र भी प्रस्तुत किए जिनमें से डा. महावीर मीमांसक, आचार्य वेदप्रकाश क्षोत्रिय, आचार्या सूर्यादेवी, डा. कमलेश शास्त्री, डा.मोक्षराज आदि प्रमुख थे। इस त्रिदिवसीय समाराह में डा. कैलाश जी कर्मठ ने अपने समधुर संगीत से श्रोताओं को मन्त्र मुक्त कर दिया।

इस कार्यक्रम में मिशन की ओर से प्रकाशित पुस्तक "यजुष–साम विमर्श" का विमोचन किया गया। अन्त में वैदिक मिशन के अध्यक्ष डा. सोमदेव शास्त्री ने समस्त विद्वानों का आभार व्यक्त किया।

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 01-02/05/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

DAV COLLEGE AMRITSAR

Accredited A+ By NAAC, Bangalore, College with Potential for Excellence
Rated Star College in Life Sciences by Ministry of Science & Technology, Govt. of India

This Institution on the strength of its State-of-Art infrastructure, sublimated Academic Excellence, high parameters of success in NCC, NSS, Co-curricular activities and Sports is moving on a trail from excellence to perfection.

OUR STRENGTHS

- Innovative Skilled and Knowledgeable Faculty with large number of Ph.Ds
- Web-based Teaching-cum-Learning Methodologies.
- AC & Sound Proof Cyber and fully automated Library
- Fully Acoustic College Auditorium & Seminar Room.
- Eight Hi-tech Computer Labs with Internet, ISDN, PSDN, Dial-up Connections.
- Two Bio-technology Labs with incubator.
- Mass Communication & Video Production Department with Audio/Video Labs & Studio
- Hi-tech Communication lab with latest English Language Software & Talk-back System
- Excellent Facilities for Sports, State of Art Gymnasium and Boxing Ring
- Multinational companies like Infosys, Wipro, IBM, Dell, Thermax, Bank of America and Converges regularly visit this Institution for placements.

COURSES OFFERED

Post Graduate Programme

MA (English) MA (Economics) MA (Punjabi)
MA (History) MA (Hindi) Msc (Comp Sc)
MSc (Maths) M.Com MSc (Physics)
Post Graduate Diploma in Computer Application

Under Graduate Programme (Professional)

Bachelor of Computer Application (BCA)
Bachelor of Journalism & Mass Comm (BJMC)
Bachelor of Business Administration (BBA)
Bachelor of Commerce (Professional)
Bachelor of Science (Information Technology)
Bachelor of Science (Biotechnology)
Bachelor of Multimedia (BMM)

Under Graduate Programme (Regular)

Bachelor of Commerce (Regular)
Bachelor of Science (Computer Science)
Bachelor of Science (Medical)
Bachelor of Science (Non-Medical)
Bachelor of Science (Economics)
Bachelor of Arts

Vocational Subject

Biotechnology,
Mass Communication & Video Production
Computer Application,

Evening Shift Programm

Bachelor of Art
Elective Subject: Economics, Pol. Sc.
Philosophy, History, Computer Science,
MCVP

Elective Subject in Arts

History, Philosophy, Political Science,
Physical Education, Economics, Sanskrit
Computer Science, Tour & Travel
Elec. Hindi / Eng / Pbi

Ring : 0183-2553377, 2534971,
E-mail: davasr@yahoo.com, website: www.davindia-asr.org

Dr K N Kaul
Principal

With Best Compliments

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**